26

वीर शैव धर्म के मूल तत्व

मूल लेखक :
डा० मल्लिदेवरू

अनुवादक :
डा० शिवराज, एच०
गुलबर्गा विश्वविद्यालय

भारतीय विद्या प्रकाशन
दिल्ली (भारत) वाराणसी

प्रकाशक :

भारतीय विद्या प्रकाशन

(१) १ यू० बी० जवाहरनगर, बेंग्लोरोड़, दिल्ली-११०००७

(२) पो० बो० ११०८, कचौड़ी गली, वाराणसी-२२१००१

वितरक :

भारतीय बुक कार्पोरेशन

पो० बा० २१४४, १. यू० बी०, जवाहरनगर, बेंग्लोरोड़, दिल्ली-७

संस्करण, १९९१

मूल्य : ४०-००

ISBN. : 81-217-0083-3

मुद्रण :

अमर कम्पोजिंग एजेन्सी

शाहदरा दिल्ली-११००३२

१

वीरशैव धर्म में ईश्वर की कल्पना

शैवागमों में लिंग[1] परम (तत्व) सत्य माना गया है। शैवागमों में लिंग[2] की कल्पना उपनिषदों[3] में परब्रह्म[4] की कल्पना से मेल खाती है।

शैव धर्म प्राचीनतम धर्मों में एक है। उसकी उत्पत्ति का निश्चित समय जानना संभव नहीं है। शिव सर्वोच्च देवता है। शिव की महत्ता[5] के संबंध में महाभारत में अनेक उल्लेख मिलते हैं। अथर्वशिर उपनिषद्[6] में कहा गया है कि बंधन से छुटकारा पाने के लिए शरीर पर भस्म लगाना चाहिए। मेगस्थनीज़ शिव की पूजा का उल्लेख करते हैं।[7] पंतजलि परिव्राजक शिव-भागवती, तथा साधुओं का उल्लेख करते हैं। उन्होंने कहा है कि घरों में उपासना के लिए अनमोल धातुओं से बनी, शिव तथा रूद्र की प्रतिमाएं रहा करती थीं।[8] श्वेताश्वतर[9] तथा कुछ और उपनिषदों[10] ने शिव की श्रेष्ठता का समर्थन किया है।

ऋग्वेद,[11] यजुर्वेद[12] तथा अथर्ववेद[13] में रुद्र-शिव का उल्लेख मिलता है। हड़प्पा और मोहेंजोदरो[14] की खुदाई से सिन्धु घाटी सभ्यता की समृद्धि का पता चलता है। उन प्रदेशों में मिले अनेक शिव-लिंगों से वहां के निवासियों के धर्म का आभास मिल जाता है।[15] प्रो० के० ए० नीलकंठ शास्त्रीजी का कथन है—'शैव धर्म का प्रसार सिंधु घाटी से बंगाल तक भारतव्यापी ही नहीं, सागरपार बृहत्तर भारत, मलय तथा उत्तरी पर्वत-श्रेणियों से परे मध्य एशिया तक दिखाई देता है।'[16] इससे स्पष्ट है कि शैव धर्म का भारत तथा भारत से बाहर भी प्रसार हुआ था। दक्षिणामूर्ति, नटराज आदि की मूर्तियों के रूप में शिव की उपासना होती अवश्य है। पर विशेष रूप से लिंग की आकृति में उसकी जो उपासना होती है, वह महत्वपूर्ण है। हड़प्पा और मोहेंजोदरो के अवशेषों में मिले शिवलिंग इसके लिए प्रमाण माने जा सकते हैं।

वार्थ[17], सर रा० गो० भंडारकर,[18] जैसे विद्वानों ने बसवनाल[19] तथा डा० जे० एन० फर्कुहार[20] जैसे विद्वानों ने लिंग-पूजा के स्रोत और अस्तित्व के बारे में कई सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं।[21] यहां बाकी सिद्धान्तों की अपेक्षा केवल मुख्य दो सिद्धान्तों के विश्लेषण का प्रयास किया जा रहा है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि लिंग स्तूप का ही लघु रूप है। बुद्धदेव के अवशेषों पर निर्मित बौद्ध स्तूपों की देखादेखी शैवों ने रूपायित किया है। डॉ० एस० सी० नन्दीमठजी ने २ सदी ई० पू० की पुरातत्व सामग्री के प्रमाणों के आधार पर यह भली भांति सिद्ध किया है[22] कि २सदी ई० पू० में भी लिंग-पूजा प्रचलित थी। इन बहुश्रुत विद्वान महोदय का निष्कर्ष है कि लिंग-पूजा स्तूपों से भी बहुत पुरानी रही होगी।

एक और सिद्धांत[23] के अनुसार यूपस्तंभ[24] ही लिंग-पूजा का स्रोत है। स्वामी विवेकानन्दजी इस सिद्धांत के पक्ष में थे। अथर्ववेद में शाश्वत ब्रह्म के प्रतीक के रूप में एक अनादि और अनन्त स्तंभ या स्कंभ का वर्णन मिलता है। यही स्तंभ सर्वोच्च देवता माना गया है और इसका नाम लिंग पड़ गया। लिंग की महत्ता का पूरा समर्थन इस सिद्धांत में नहीं दिखाई देता। पर इससे लिंग के दो अंशों का महत्व जाना जा सकता है। पहला है—लिंग स्तभ के लघु रूप के बराबर है और दूसरा कि वह प्रकाशस्तंभ के समान है।

शैवागम,[25] उपनिषदें[26] तथा शरणों (रहस्यदर्शियों) की वाणी[27] के अनुसार लिंग, जो परात्पर है (पूर्ण है), प्रकाशों का प्रकाश है।[28]

हड़प्पा और मोहेंजोदरो के अवशेषों में मिले शिवलिंगों की संख्या इस बात का प्रमाण है कि लिंगपूजा पुराकाल से चली आई है। इन प्रमाणों के आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि लिंगपूजा तीन हजार ई० पू० में भी रही होगी।

लिंग की प्रकृति और महत्ता की पूरी जानकारी शैवागमों और वीरशैव धर्मानुयायी शरणों की उक्तियों से हो जाएगी।

लिंग[29] की व्युत्पत्ति दो धातुओं से[30] मानी गई है। ली और गम् ही दो धातु हैं। गम् का आशय गति, व्यक्त होना अर्थात् सृष्टि का मूल स्रोत है। ली का आशय विलयन है अर्थात् अंततोगत्वा सभी पदार्थ उसी में विलीन हो जाते हैं।[31] अतः सृष्टि के आविर्भाव व तिरोभाव का क्रम से स्रोत और लक्ष्य लिंग है।

दूसरे शब्दों में लिंग[32] वह है जो सृष्टि के जड़-चेतन के विलास का मूल है और इन सबका विलयन भी उसी में होता है। लिंग सृष्टि, स्थिति, लय के लिए उत्तरदायी भी माना गया है।[33] सूक्ष्मागम[34] में लिंग के विचित्र व्यापार का बड़ा सुंदर वर्णन मिलता है। वीरशैव दर्शन के अधिकारी प्रतिपादक चेन्नबसवण्ण ने लिंग-कल्पना की मार्मिक व्याख्या की है। उनके अनुसार ईश्वरीय लीला में 'ली' शून्य या परात्पर तत्व का प्रतीक है। 'बिंदु' या 'अनुस्वार' लीला का द्योतक है। 'ग' प्रभु की चैतन्यशक्ति का द्योतक है। इसी त्रिविध व्यापार में लिंग का मर्म छिपा हुआ है। इस मर्म को जाननेवाला ईश्वर के साक्षात्कार में समर्थ होता है।

लिंग का साक्षात्कार कर चुकने वालों के चरणों पर
ए कूडलचेन्नसंगम देव ! मैं मस्तक नवाता हूँ ।[35]

यहां इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि ईश्वर ने अपनी लीला हेतु सृष्टि का निर्माण किया है ।[36] सूक्ष्मागम[37], तैत्तिरीयोपनिषद्[38] और महोपनिषद्[39] में कहा गया है कि सृष्टि ईश्वर की लीला या इच्छा हेतु है ।

छांदोग्योपनिषद् में लिंग ही कल्पना से मिलता-जुलता एक संक्षिप्त सूत्र 'तज्जलान्'[40] मिलता है । शंकराचार्यजी ने 'तज्जलान्' की व्याख्या इस प्रकार की है ।[41] परात्पर (ब्रह्म) तत्व से इस सृष्टि का सृजन हुआ है (ज), इसी में उल्टे क्रम से सृष्टि का विलयन होगा (ल), और इसी के सहारे सृष्टि का अस्तित्व रहेगा भी (अन्) । तैत्तिरीयोपनिषद्[42] में ऐसा ही विचार मिलता है । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व ।

तद्ब्रह्मेति ।[43] (ये प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले सब प्राणी जिनसे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिनके सहयोग से, जिनका बल पाकर ये सब जीते हैं महाप्रलय के समय जिनमें विलीन हो जाते हैं, उनको वास्तव में जानने की इच्छा कर । वे ही ब्रह्म हैं ।'

गम्[44] से ही लिंग शब्द व्युत्पन्न है । इसका आशय गहराई से जानना, सूक्ष्म-बोध, अर्थग्रहण आदि होता है जैसे 'अधिगम्' । योगियों के लिए[45] लिंग ध्यान का सहारा है । और वे इसी का अन्वेषण करते हैं ।

शैवागमों में परात्पर तत्व के लिए लिंग और शिव पर्यायवाची शब्द मिलते हैं । यह भी सर्वविदित है कि शिव का शक्ति से अविनाभाव संबंध (इन्सेपरेबल आयडेंटीटी) उसी प्रकार है जिस प्रकार चाँद से चाँदनी का[44] अतः लिंग शिव-शक्ति के अविनाभाव संबंध का द्योतक है ।[47] शैवागामों में शिव और शक्ति क्रम से नाद और बिंदु भी माने गये हैं ।[48]

नाद-बिंदुरूपात्मक लिंग सृष्टि का मूल कारण माना गया है ।[49] ऐसा बिन्दु ही पीठ है और नाद उस पर आधारित रेखा है ।[50] गोलाकृति की रेखा बिन्दु पर खड़ी है ।[51] दूसरे शब्दों में लिंग का ऊपरी हिस्सा शिव है और उसका आधार बना पीठ ही शक्ति है ।[62] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि शिव-शक्ति रूपी नाद-बिन्दु का सम्मिलन लिंग रूप में हुआ है ।[53] यह लिंग की दार्शनिक व्याख्या है ।

ब्रह्माण्ड (कॉसमोलॉजिकल) की दृष्टि से भी लिंग की व्याख्या मिलती है । वास्तव में ईश्वर निराकार है और भक्तों के लिए ही वह साकार होता है । ईश्वर ही सृष्टि का जनक है । सर्वसमर्थ ईश्वर स्वेच्छा से कोई भी आकार ग्रहण कर सकता है ।[54] विश्व अर्धवृत्ताकार लगता है । वृत्ताकार क्षितिज ही उसकी सीमाएँ हैं । वह

धरती पर टिका है। लिंग का ऊपरी हिस्सा अर्धवृत्ताकार है।

विश्व अर्धवृत्ताकार लगता है। वृत्ताकार क्षितिज ही उसकी सीमाएं हैं। वह धरती पर टिका है। लिंग का ऊपरी हिस्सा अर्धवृत्ताकार है और उसका आधार वृत्ताकार है। अतः लिंग[55] विश्व का द्योतक[56] है।

मैंने श्री बसवेश्वर के अष्टशती स्मारक ग्रंथ में प्रकाशित अपने लेख में लिखा है कि वीरशैव धर्म में लिंग के विविध अंशों पर ध्यान आकर्षित करने के लिए लिंग को बयलु, शून्य, निष्कल लिंग, स्थल आदि नामों से भी पहचाना जाता है।[57]

लिंग 'बयलु' [58] इसलिए है कि वर्णनातीत है।[59] उपनिषदों में परब्रह्म को सूचित करने के लिए ऋषियों ने 'नेति, नेति'[60] का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।

वह 'शून्य'[61] इसलिए है कि वह गुणातीत है। वीरशैव धर्मानुयायी शरणों ने जिस 'शून्य' का प्रतिपादन किया है वो 'अभाव' का द्योतक नहीं है, वह उपनिषदों में वर्णित परब्रह्म का[62] पर्याय है। वह निष्कल लिंग[63] इसलिए है कि उसका कोई आकार नहीं है और वह वाणी तथा चिंतन से परे है। वह लिंग 'स्थल'[64] भी कहा गया है। आधिभौतिक दृष्टि से वह परात्पर है, विकास[65] और भौतिक जगत् का मूल स्रोत है। और उसी में सभी पदार्थ विलीन हो जाते हैं।[66] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'स्थल' अध्यात्म की साधना में साधक की प्रगति का एक सोपान सूचित करता है। उसका प्रयोग लिंग की अवस्थाओं (के स्तरों)[67] को व्यक्त करने के लिए भी होता है।

परात्पर (निष्कल लिंग)[68] जो आरंभ में निराकार था, अद्वितीय था, स्वतंत्र था, चैतन्य था, आनन्दरूप, शाश्वस्त था और परिपूर्ण था, वही साकार हो गया। शैवागमों में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि परात्पर जो गुणातीत[69] था साकार [70] हुआ। वह भक्तों की सहायता करने स्वेच्छा से आकार ग्रहण करने वाला हुआ।

विद्यारण्यजी ने ठीक ही कहा है कि सगुण ब्रह्म का ध्यान लगाने वाले ही परब्रह्म को जानने के अधिकारी हो सकते हैं और इस सर्वोच्च ब्रह्मविद्या को सीख सकते हैं।[7]

मूर्त और अमूर्त, शब्द और अशब्द, ईश्वर और परब्रह्म इनमें संबंध क्या है? वे सब घुले-मिले हैं या अलग-अलग हैं? ईश्वर और परब्रह्म के बारे में डी० एम० एड्वर्ड्स के विचार हैं—'हमारे सामने यह मूल समस्या है जिसे हम परब्रह्म और ईश्वर, एक और अनेक, सर्वव्यापी और सर्वातीत, शाश्वत और क्षणिक अनंत और सांत, सामान्य और विशेष आदि की समस्या के रूप में अंकित कर सकते हैं।'[73]

सर जॉन वुडराफ़ का कहना है—'शास्त्र के अनुसार एक दृष्टि से ब्रह्म और ईश्वर दोनों एक हैं। दूसरी दृष्टि से वे दोनों एक नहीं है। ब्रह्म निर्गुण है, ईश्वर सगुण है।'[71] उपनिषद् के ऋषियों तथा शैवागमों के रचयिताओं तथा शरणों की उक्तियां यहां

उद्धृत हैं जो ब्रह्म के दोनों रूपों की स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करती हैं।'

निराकार या निष्कल और साकार या सकल एक ही परात्पर तथ्य [76] के भिन्न भिन्न अंश हैं।[76] सूक्ष्मागम में दृष्टांत के सहारे यह स्पष्ट किया गया है कि साकार और निराकार[77] एक ही अखंड तत्व के दो अंश हैं और दोनों में कोई अंतर नहीं है [78] साकार और निराकार अंश[79] वास्तव में परात्पर[81] के संकल्प[80] पर निर्भर हैं। बृहदारण्यक[82] तथा मैत्रायण्युपनिषद्[83] में भी ब्रह्म के साकार निराकार दोनों रूप माने गये हैं।

डॉ० एस० राधाकृष्णन्‌जीने कहा है--'ब्रह्म की, अपनी पूरी संभावनाओं के साथ, सत्ता होनी चाहिए। तभी ईश्वर उनमें से कोई एक चुनकर सृष्टि के निर्माण, कार्य में प्रवृत्त हो सकता है। सृष्टि में ईश्वर की व्यापकता से पूर्व ईश्वरीय संकल्प होना चाहिए। सृष्टि से पूर्व सृष्टि-तत्व होना चाहिए। इस प्रकार सत्य के हमें चतुर्विध रूप मिलते हैं—

(1) ब्रह्म (3) हिरण्यगर्भ और
(2) ईश्वर (4) जगत्

हिन्दू तत्व-चिंतकों ने परात्पर तत्व की समन्वित प्रकृति की व्याख्या इसी प्रकार की है।[84]

कर्नाटक के शरणों ने परात्पर के सूक्ष्मतिसूक्ष्म वर्गीकरण में उसके प्रत्येक व्यापार का जो निरीक्षण किया है वह अवश्य ध्यान देने योग्य है।

परस्पर की आदि भूमिका 'सर्वशून्यनिरालंबस्थल'[85] जो माना गया है, वह बड़ा अर्थपूर्ण है। परात्पर अद्वितीय था ही। उसका कोई आकार या आलंब न था। वही समस्त सृष्टि का मूल जो था। वह नाम, रूप, तत्व इनसे परे था।[86] वह गुणातीत था। वह नादबिन्दु कालातीत था। अतः परात्पर की यह भूमिका 'सर्वशून्य निरालंबस्थल'[87] ठीक ही कही गयी है। इसकी तुलना छांदोग्य और श्वेताश्वतर उपनिषदों की ब्रह्म-संबंधी इन उक्तियों से की जा सकती है—

'आरम्भ में यह अकेला था। एक ही था। अद्वितीय था।[88] जब कोई अन्धेरा नहीं तब न कोई दिन है, न रात है, अस्तित्व है, न अनस्तित्व ही। केवल शिव ही है।'[89]

इस सर्वशून्यनिरालंबस्थल[92] में शिव[90] की परब्रह्म[91] रूप में जो कल्पना है। उसकी तुलना उपनिषदों में वर्णित परब्रह्म[93] तथा शंकराचार्यजी के निर्गुण ब्रह्म से की जा सकती है।

शून्यलिंग की दूसरी भूमिका[94] निष्कललिंग स्थल[95] है। लिंग षट् कलातीत है। इस तथा पूर्ववर्ती भूमिका में यह अन्तर है कि पहले प्रभु में कोई संकल्प न था, पर अब

उसमें संकल्प (चिन्ता या 'नेनहु')[96] है।

आरम्भ में निष्कलिंग अविभाज्य था, अद्वितीय था, अखंड था, शून्य था, स्वतन्त्र था, चैतन्य था, अब आनन्द रूप था, शाश्वत था और परिपूर्ण था। वह वाणी से परे था।[97] कुछ विद्वानों ने[98] निष्कलिंग को परब्रह्म की प्रथम भूमिका मानी है। इसी में शून्य है। सर्वशून्य निरालम्ब और निष्कलिंग में संकल्प ही भेदक लक्षण है। उपनिषदों की कुछ उक्तियों से उसकी तुलना की जा सकती है। महोपनिषद् में कहा गया है—'परब्रह्म एकाकी न रमते।'[99] छांदोग्य उपनिषत् में आगे कहा गया है—'एको हं बहुस्याम् प्रजाये'[100] तैत्तिरीय[101] और शांडित्योपनिषदों[102] में भी इससे मिलता जुलता भाव है।

यह निष्कलिंग[103] निराकार है। मन से परे है। अकलंक है। वाणी से परे है। इसे 'मूललिंग' भी कहा जाता है। श्वेताश्वतर,[204] योगशितापनिषद्[106] आत्मोपनिषद्[106] आदि में ब्रह्म के परात्परत्व का ऐसा ही वर्णन मिलता है।

निष्कल लिंग के बाद महालिंग अगली भूमिका है।[107]

महालिंग में चित्-शक्ति[108] का उत्कर्ष होता है। पहले की भूमिकाओं में वह सुप्त रहती है यद्यपि परब्रह्म में उसका शाश्वत अस्तित्व रहता है। साध्वी महादेवियक्क ने निष्कलिंग से महालिंगस्थल के विकास की प्रक्रिया का वर्णन यों किया है—'निष्कलिंग से चित्-शक्ति विकसित हुई है। उससे चिन्नाद, चिद्बिंदु, चित्कला स्फुरित हैं। चित्त, चिन्नाद, चिद्बिन्दु, चित्कला आदि के योग से अर्धवृत्त-आकार में रहे महालिंग—[109] का विकास हुआ है।' महादेवियक्क के कथन से सिद्धवीर शिवयोगी का कथन मिलता है। महालिंग[110] के विकास की प्रक्रिया का वर्णन दोनों में समान है। और भी कई शरणों ने यही विचार व्यक्त किया है।

महालिंग की व्याख्या दूसरे तरीके से भी होती है। निष्कलिंग से ज्ञानचित् का विकास हुआ। इससे नाद, बिन्दु, कला आदि के लिए क्रम से रहे 'अ', 'उ', 'म', तीन वर्ण निकले। चित्, अ, उ, म इन चारों का योग ही ओंकार प्रणव है।[112]

ओंकार प्रणव ही महालिंग है।[113] शिवपुराण की विद्येश्वर संहिता में इससे मिलता जुलता वक्तव्य दिखाई देता है।[114] शिवपुराण में आगे कहा गया है—'अ लिंग-पीठ का द्योतक है, उ जलधारी का प्रतीक है और म ऊपर की गोलाकृति है। यह महालिंग ही शिवलिंग माना जाता है जिसमें शिव (नाद) शक्ति (बिन्दु) और कला विद्यमान हैं।[116]

यह लिंग सृष्टि का मूल कारण है। मोक्षकामी इसकी उपासना करें, यही विधान है। सृष्टि का मूल माना गया महालिंग[117] भावलिंग, प्राणलिंग और इष्टलिंग इन तीनों रूपों में पहचाना जाता है।

कुछ शैवागम[118] सर्ववाद या बहुदेववाद का निषेध करते हैं और 'एक मेवद्वितीयम्' का समर्थन करते हैं। बसवेश्वर ने[119] शक्ति-विशिष्टाद्वैत[120] की स्पष्ट घोषणा की। लिंग विश्वव्यापी और विश्वातीत है।[121]

यह विश्वव्यापक होकर भी गतिविधियों से अप्रभावित है।[122] लिंगसर्वव्यापी होकर भी अगोचर है।[123]

सत्, चित्, आनंद—शाश्वतता और पूर्णता—लिंग के लक्षण हैं। वह अणोरणीयान् और महतो महीयान् है।[126]

वह वाणी और मन से परे है।[127] वाणी उसका वर्णन नहीं कर पाती, मन उसे पा नहीं सकता।[128] थोड़े में कहना हो तो कह सकते हैं कि लिंग सभी माँगलिक गुणों की निधि है।

गुणातीत, रूपातीत परब्रह्म का साक्षात्कार आकार[129] के सहारे ही होना चाहिए। अतः वीरशैव धर्म में व्यक्ति में निहित चैतन्य के उद्बोधन की बात कही गई है। यह दीक्षा-प्रक्रिया[130-131] से होता है।

इसमें गुरु[133] से मिले इष्टलिंग की उपासना[132] का विधान है। इष्टलिंग व्यक्ति को आत्मा से भिन्न नहीं है।[134] अतः इष्टलिंग[135] शिव का प्रतीक है।[136] वह सर्वांतर्यामी है।[137]

वास्तव में इष्टलिंग अपना ही आत्म रूप है।[138] इस प्रकार हम देखते हैं कि इष्टलिंग देवाधिदेव शिव का ही प्रतीक है। सभी वीरशैव शरणों ने इष्टलिंग को सदा शरीर पर धारण करने की बात पर जोर दिया है।[139] लिंग भवसागर पार करने के लिए नौका है।[140] भक्त को सदा लिंग धारण करना चाहिए।[141] और परब्रह्म के साक्षात्कार के लिए उसकी पूजा करनी चाहिए।[142]

संदर्भ

१. भर्गं वरेण्यं यद्रूपं तल्लिङ्गमिति कीर्तितम्।
तस्माल्लिङ्गं परं ब्रह्म सदा ध्यायन्ति योगिनः।।
तन्त्रसङ्ग्रहः, क्रियापाद, पटल II श्लो० २४ पृ० ८०

२. लयं गच्छति यत्रैव जगदेतच्चराचरम्।
पुनः पुनः समुत्पत्ति तल्लिङ्गं ब्रह्म शाश्वतम्।।
सिद्धान्तशिखामणि, लिङ्गधारणस्थल, श्लोक १६, पृ० ९३

३. जठरे लीयते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।

पुनरुत्पद्यते यस्मात्तद्ब्रह्म लिङ्गसंज्ञकम् ।।
चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, पटल III, श्लो० ८, पृ० १७

४. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति ।।
इत्येवं विश्वस्य प्रपंचस्य लयगमनकारणं लिङ्गमिति वक्तव्यम् ।
वेदान्तसारवीरशैव चिन्तामणि, प्रकरण ४, पृ० ६०

५. महाभारत, VII अध्याय २०२; XII अध्याय १४-१८

६. अथर्वशिरोपनिषत् V, पृ० १५७

७. हिन्दूइज्म एण्ड बुद्धिज्म, भाग २, पृ० १३७-१३८

८. कलेक्टेड वर्क्स ऑफ सर आर० जी० भाण्डारकर, भाग-४, पृ० १६४.

९. श्वेताश्वतरोपनिषत् IV-१४ पृ० १२४, VI-७ पृ० १२६.

१०. शैव उपनिषद् अर्थात् अक्षमालिका, अथर्वशिणा, अथर्वशिर, कालाग्निरुद्र, कैवल्य, गणपति, जाबालि, दक्षिणामूर्ति, पंचब्रह्म, बृहज्जाबाल, भस्मजाबाल, स्वहृदय, रुद्राक्षजाबाल, शरभ, श्वेताश्वतर-संपादक : ए० महादेवशास्त्री, प्रकाशक: अड्यार लाईब्रेरी, मद्रास १९५०.

११. ऋग्वेद I-१०१-७; II-३३; X-९२.९

१२. तैत्तिरीय संहिता IV-५.१

१३. अथर्ववेद IV-२८.१; XI-२.१०; XIII-४.२६

१४. देखो : मोहन-ज-दरो एण्ड दी इण्डस वेली सिविलिज़ेशन् सर जान मार्शल ।

१५. दी रिलिजन ऑफ दी मोहन-ज-दरो पीपुल एच० हैरास, जर्नल ऑफ दी यूनिवर्सिटी ऑफ बम्बई—जुलाई १९३६ ।

१६. दी कल्चरल हेरिटेज ऑफ इंडिया भाग ४ पृ० ६३

१७. रिलिजन्स ऑफ इंडिया— पृष्ट २६२

१८. क्लेक्टेड वर्क्स ऑफ सर आर० जी० भाण्डारकर—भाग ४, पृ० १६०-१६४.

१९. वीरशैव तत्व प्रकाशिका, पृ० १५९-१७२.

२०. एन आउटलाइन ऑफ दी रिलिजस लिटरेचर ऑफ इंडिया—पृ० १०२-१०३.

२१. इष्टलिङ्ग विज्ञान - पृ० १-२५.

२२. ए हैण्डबुक ऑफ वीरशैविज़्म—पृ० ११३-११४.

२३. सिद्धान्त दीपिका X-२१.

२४. काठक संहिता XX-९; XXXI-१; अर्लियर स्कंभ ईज यूज्ड बट ओनली मेटफारिकली ऋग्वेद, I- ३४.२, IV-१३.५ वैदिक इंडैक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट् II पृ० ४८२.४८३.

२५. तस्यैव तेजसा देवि चन्द्रादिग्रहतारकाः ।
प्रकाशन्ते नियमिताः कालकृद्या दिवानिशम् ॥
सूक्ष्मागम, संपादक व प्रकाशक : पंडित काशीनाथ शास्त्री, क्रियापाद पटल, VI श्लो० ६, पृ० ३६.

२६. तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति—कठोपनिषत् II. ५. १५ पृ० ८ आलसो रेफरन्स फार सीमिलर आयडीया, मुण्डकोपनिषत् II. २-१०, पृ० १७.

२७. स्वस्थान सुस्थिरद सुमनमष्टपदोळगे.
नित्य निरंजन प्रमेय वेळगु
शिवयोगदनुभाव एकार्थवागि गुहेश्वरा
निम्म शरणनु अनुपम सुखियागिर्दनु
शरणर अनुभाव साहित्य—पृ० ८६
स्वस्थान सुस्थिर सुमनमण्डप में नित्य निरंजन की प्रभा प्रकाशित है। गुहेश्वर शिवयोग की रहस्यानुभूति हुई है। आपका शरण अनुपम सुखी है।

२८. ज्योतिषामपि तज्जयोतिः
योगशिखोपनिषत् III. २२ पृ० ४०२, मुण्डकोपनिषत् II-२.६ पृ० १७
ब्रह्मविद्योपनिषत्, श्लो० ६५, पृ० २५३

२९. लीयते शम्यते यत्र येन सर्वं चराचरम् ।
तदेव लिङ्गमित्युक्तं लिङ्गतत्व परायणैः-शिवानुभवसूत्रम् III. ३ पृ० ३३

३०. इस्यादिवचन प्रमाणलिंग शोषणे गम्लृगतविति
धातुद्वयान्निष्पन्नोऽयं लिङ्गशब्दः—वेदान्तसारवीरशैव चिन्तामणि, प्रकरण IV, पृ० ६१

३१. तदागमानुसारेण लिंगं वक्ष्यामि सांप्रतम् ।
यतो जातमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥
लीयते प्रळये यत्र तदिदं लिंगमुच्यते ॥
ए हैण्डबुक ऑफ वीरशैविज़्म—पृ० २५८

३२. लीनं प्रपंचरूपं हि सर्वमेतच्चराचरम् ।
सर्गादौ गम्यते यस्मात्तस्माल्लिङ्गमुदीरितम् ॥
सूक्ष्मागम, (संपादकः काशीनाथ शास्त्री) क्रियापाद, पटल VI श्लोक ६, पृ० ३८

३३. अव्यक्तं लिङ्गमाख्यातमनन्तमजरं ध्रुवम् ।
गुणत्रयं तदेवेशः सृजत्ययति हन्ति च ॥

चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, पटल III श्लो० ६ पृ० १७

३४. लिकारो लयबुद्धिस्थो बिन्दुनास्थितिरुच्यते ।
गकारासृष्टिरित्युक्ता लिङ्गसृष्ट्यादिकारणम् ।।
सूक्ष्मागम, क्रियापाद, पटल VI श्लो० ५ पृ० ३८

३५. लिकारवे शून्य, बिन्दुवे लीले, गकारवे चित्तु
ई त्रिविधदोळगदे लिङ्गवेम्ब सकील
इदर संचवानावात बल्ल आतने लिङ्गसङ्गि
इदु कारण लिङ्गनुभाविगळ श्रीचरणक्के
नमो नमो एंवे कूडलचेन्नसङ्गमदेवा
षट्स्थल चकवर्ति चन्नबसवण्णनवर वचनगळु-V व-८१० पृ० ३८४
लिकार ही शून्य है। बिंदु ही लीला है। गकार ही चित् है। इन्हीं तीनों में लिंग की सत्ता है। इसका मर्म जानने वाला ही लिंगसंगी है। कूडलचेन्नसंगमदेव ! इसीलिए लिंगानुभावियों के श्रीचरणों को बार-बार प्रणाम।

३६. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्—ब्रह्मसूत्र II. १.३३

३७. एवंरूपः परात्मा हि पशुपाशविमोचकः
शम्भुः कदाचिन्निजया प्रकृत्या लीलया स्वयम् ।
सृष्ट्यर्थं सर्वतत्वानां जगदुत्पत्तिकारणम्
योगिनामुपकाराय स्वेच्छया अचिन्तयच्छिवः ।।
सूक्ष्मागम (ए० बाय काशिनाथ शास्त्रि) क्रियापाद, पटल I श्लो० १८-१९

३८. सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति
तैत्तिरीयोपनिषत् II ६.१ पृ० २४.

३९. लीलया कल्पयामास चित्राः सङ्कल्पतः प्रजाः—महोपनिषत् V श्लो०.१.६२ पृ० ३८७.

४०. सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत-छान्दोग्योपनिषत् III.१४.१ पृ० ४५

४१. तज्जलानिति तस्मादब्रह्मणो जातं तेजोबन्नादिक्रमेण
सर्वं अतस्तज्जम् । तथातेनैव जननक्रमेण
प्रतिलोमतया तस्मिन्नेव ब्रह्मणि लीयते तदात्मतया
श्लिष्यत इति तल्लम् । तथा तस्मिन्नेव स्थितिकालेऽनिति
प्राणिति चेष्टत इति—दशोपनिषदः (शाङ्करभाष्य सहित) पृ० १७८.

४२. यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति

यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति-तैत्तिरीयोपनिषत् III.१ पृ० २६.

४३. दी थरटीन प्रींसीपल उपनिषद्, पृ० २६०.
अनुवादक-ह्यूम

४४. लिङ्गं गमकमित्याहुरपरे लिङ्गवित्तमाः।
गम्यते योगिभिर्धातोर्गमेज्ञानार्थदर्शनात् ॥
वेदान्तसार वीरशैव चिन्तामणि—श्लो० २८ पृ० ६६

४५. तस्मालिङ्ग परं ब्रह्म सदा ध्यायन्ति योगिनः
तन्त्रसङ्ग्रहः श्लोक २४ पृ ८०.

४६. विमर्शाख्या पराशक्तिः विश्ववैचित्र्यकारिणी।
यस्मिन् प्रतिष्ठिता ब्रह्म तदिदं बिश्वभाजनम् ॥
यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्वस्तु प्रकाशिनी
तथा शक्तिर्विमर्शाख्या प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिता
सिद्धान्तशिखामणि, XX श्लो० ३१-३२ पृ० २७०

४७. लिङ्गं शैवमिदं साक्षात् शिवशक्तयुभयात्मकम् तन्त्रसङ्ग्रहः श्लो० ६ पृ० ७६.

४८. बिन्दुः शक्तिः शिवोनादः शिवशक्त्यात्मकं जगत्।
चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, पटल III श्लो०.१३ पृ० १८

४६. बिन्दुनादात्मकं लिङ्गं जगत्कारणमुच्यते
चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, पटल III श्लोक-१६ पृ० १८.

५०. नादो लिङ्गमिति ज्ञेयं बिन्दुः पीठमुदाहृतम्।
नादबिन्दुसमायुक्तो लिङ्गकारमिहोच्यते ॥
वीरशैवाचारप्रदीपिका—अध्याय I श्लोक.८३ पृ० ११.

५१. परानन्दात्मकं लिङ्गं केवलं सन्निरंजनम्।
ज्ञानात्मकं सर्वगतं योगिनां हृदये स्थितम् ॥
गोलकं परतत्वं च चिन्मयं सद्विलासकम्।
शरण्यं सर्वतत्वानां लिङ्गकारमिहोच्यते।
शिवतत्वरत्नाकर, कल्लोल, I तरङ्ग ४ श्लोक.२१-२२ पृ० ११.

५२. प्रणवो वेदिरस्यायां नादो लिङ्गाकृतिर्मुने।
बिन्दुनादमये लिङ्गे नित्यं सन्निहिताश्शिवः ॥
चन्द्रज्ञानागम, क्रियापाद, पटल III श्लोक.१२ पृ० १८.

५३. नादरूपश्शिवस्साक्षालिङ्गमित्यभिधीयते ।
तत्पीठिका महाशक्तिः सा च वै बिन्दुरूपिणी ॥

तन्त्रसंङ्ग्रहः, क्रियापाद, पटल VI श्लोक.४ पृ० ७६.

५४. विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम् । श्वेताश्वतरोपनिषत् V-१३ पृ० १२५.

५५. आकाशं लिङ्गमित्याहुः पृथ्वी तस्याधिपीठिका ।
आलयं सर्वभूतानां लयानां लिङ्गमुच्यते ॥
वीरशैवाचार प्रदीपिका, अध्याय.१ श्लोक.८५ पृ० ११

५६. पीठिका परमाशक्तिर्लिङ्गं साक्षात्परशिवः ।
शिवशक्ति समायोगाद्विश्वं लिङ्ग तदुच्यते ॥
कामिकागम, वेदान्तसारवीरशैव चिन्तामणि, में उध्दृत श्लोक.११७ पृ० १०८

५७. श्री बसवेश्वर स्मारक, ग्रंथ—पृ० ३४७.

५८. एनेन्देनलिल्ल नुडिदु हेळलिक्किल्ल,
निजदल्लिदं वेरगु कुरुह अरिवुदे ?
अदु तन्नलिल तानिल्ल ।
एनेन्देनलिल्लद बयलु अल्लि एनेनू अरसलिल्ल
इदिरिल्ल तानिल्ल
चिक्कय्यप्रिय सिद्धलिङ्गं इल्ल इल्ल ।
वचन शास्त्रसार—भाग-१ पूर्वार्ध V वचन.१ पृ०-७
'वह क्या है, किसी ने कहा नहीं । वाणी से वह व्यक्त नहीं । सच्चाई में निहित ज्ञान अपने को पहचान सकेगा ? वह अपने में आप नहीं । वर्णनातीत बयलु, वहाँ कुछ भी नहीं चाहने लगा । वह सामने नहीं । वह आप नहीं । चिक्कय्य प्रिय सिद्ध-लिंग कहते हैं कि नहीं, नहीं ।

५९. आडवारद बयलु नोडवारद बयलु
नडियवारद बयलु हिडियबारद बयलु
ई ओडलिल्लद बयलोळडगिप्प भेदव
ई लोकदजडरेत्त बल्लरै रामनाथा
देवर दासिमार्य प्रशस्ति V वचन ५ पृ० १३२
('बयलु वर्णनातीत है । बयलु अगोचर है । बयलु अकथनीय है । बयलु पकड़ से परे है । राम्नाथ का कहना है कि निपेदू बयलु में छिपा रहस्य इस जगत् के सांसारिक जीव क्या जाने !

६०. बृहदारण्यकोपनिषत् III ९.२६ पृ० ९९.

६१. अय्या निरवय शून्यलिङ्गमूर्तिय निलुकडे एन्तेन्दोडे
साकारनल्ल निराकारनल्ल नोडा
निरवय शून्यलिङ्गमूर्ति आदियल्ल अनादियल्ल,

इहदवनल्ल परदवनल्ल, सुखदवनल्ल दुःखदवनल्ल
निरवय शून्य लिङ्गमूर्ति पुण्यपापदवनल्ल
कर्तृ भृत्यनल्ल कारण कार्यनल्ल, धर्मि कर्मियल्ल,
पूज्यपूजकनल्ल.
इन्तु उभयवलिदु वेळगुव नोडा नम्म गुहेश्वरलिङ्गवु
वचन शास्त्र सार, भाग-I पूर्वार्ध V वचन.२ पृ० १
'भाई ! निरवय शून्य लिंग-मूर्ति की महत्ता क्या गाऊँ ? वह निरवय शून्य-लिंग न साकार है, न निराकार ही। वह आदि नहीं, अनादि नहीं। वह न इह का है, न पर का ही। न सुखी है, न दुःखीही। निरवय शून्यलिंग-मूर्ति पुण्य पाप से परे है। वह कर्ता नहीं, भृत्य नहीं। वह कारण नहीं, कार्य नहीं। धर्म-कर्म से उसका कोई नाता नहीं। वह न पूज्य है, न पूजक ही। अपने गुहेश्वर को देखो जो इस द्वैतता से परे है और अलोकित है।"

६२. शून्यसम्पदने अंग्रेजी-भाग-I भूमिका पृ० ८.

६३. अरूपं निष्कलं ब्रह्म भावातीतं निरंजनम्।
शब्दादिविषयातीतं मूललिङ्गमिहोच्यते ॥
गण भाशितरत्नमाले—पृ० ६५.

६४. एकमेव परंब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।
शिवतत्वं शिवाचार्याः स्थलमित्याहुरादरात्
कैवल्यसार हस्त लिखित प्रति पृ० ११ मुग्धामठ, धारवाड

६५. आलयं सर्वभूतानां लोकानां सर्वसम्पदाम्।
यभ्दवेत् परमं ब्रहम स्थलं तत्प्राहुरक्षरम्॥
शिवानुभवसूत्रम् II श्लोक ८ पृ० १८.

६६. यत्रादौ स्थीयते विश्वं प्राकृतं पौरुषं यतः।
लीयते पुनस्ते च स्थलं तत्प्रोच्यते ततः।
शिवानुभवसूत्रम् II श्लो० ४ पृ० १७

६७. स्वशक्तिक्षोभमात्रेण स्थलंतद्विविधं भवेत्।
एकं लिङ्गस्थलं प्रोक्तं अन्यदङ्गस्थलं स्मृतम्॥
कैवल्यसार हस्त लिखित प्रति०पृ० १२ मुग्घामठ, धारवाड

६८. प्रथमदल्लि अखण्ड अद्वय अनुपम निरवय
निरंजन सर्वशून्यवनोळकोण्ड सच्चिदानन्द नित्यपरिपूर्णवप्प निष्कलङ्गिषु
शून्यासम्पादने—भाग-I पृ० ४८ (आरंभ में अखंड अद्वय अनुपम निरवय निरंजन सर्वशून्य समाहित सच्चिदानन्द नित्यपूर्ण ही निष्कल लिंग है।)

६९. अलक्ष्यमद्वयं शून्यममूर्तं परमाव्ययम् ।
अनामह्यकलं शुद्धमनाद्यं शिव उच्यते ?
अनादिवीरशैव सारसंग्रह—भाग-I श्लोक-३ पृ०१७

७०. सकल निष्कलव कूडिकोंडिप्पेयागि
सकल नीने देवा, निष्कल नीने कंडय्या—
······कूडलासङ्गमदेवा
बसवण्णनवर लोकप्रिय वचनगळु, वचन १७७ पृ० ४६
सगुण नागवल्ल निर्गुणनागवल्ल सगुणनिर्गुणवेरडोन्दागवल्ल···
सकलनागवल्ल निःकलवागबल्ल सफन निःकलवेरडोन्दागवल्ल···
सौराष्ट्र सोमेश्वरलिङ्गसर्वनागबल्लनोर्व नागवल्ल सर्वनोर्वनेर डोन्दागवल्ल
आदय्यन वचनगळु—वचन ५ पृ०३-४
(कूडलसंगमदेव ! सकल-निष्कल से ओतप्रोत तू ही सकल है, तू ही निष्कल है ।)
सगुण हो सकता है । निर्गुण हो सकता । सगुण-निर्गुण से युक्त एक हो सकता है ।
सकल हो सकता है । निष्कल हो सकता है । सकल-निष्कल से युक्त एक हो सकता है ।
सौराष्ट्र का सोमेश्वर लिंग सर्वमय हो सकता है, अकेला भी रह सकता है सर्वमय अकेला भी हो सकता है ।

७१. योगिनां च यतीनां च ज्ञानिनां च मन्त्रिणां तथा ।
ध्यानपूजानिमित्ताय सकलं निष्कलं भवेत् ।।
वातुलागम हस्त लिखित प्रति—तत्वभेदपटल II श्लो०२८

७२. अनुभूति प्रकाश VI ६८

७३. दी फ़िलासफ़ि आफ रिलिजन—पृ०२६५

७४. प्रिंसिपल्स आफ तंत्रास—पृ० १६९

७५. एष ते निष्कलो देवः सकलेन समन्वितः ।
अनुध्यायेन तन्नित्यं स्मरन्ति मनसा धियः !
निःश्वासकारिका हस्तप्रति पृ० ५६२
इंस्टिट्यूट फ्रांसिस दि इंदालजी पांडिचेरी

७६. हुट्टु सावेम्बुदिल्लद देवा
निर्म्मिद नीवे शून्यवल्लि बिन्दु स्वयम्भुवादिरल्ला
बीजवृक्षदन्ते साकार निराकारवु नीवेयादिरल्ला
निजगुरुस्वतंत्र सिद्धलिङ्गेश्वरा

स्वतंत्रसिद्धलिंगेश्वरन वचनगळु—वचन ४ पृ० २
(निजगुरु स्वतंत्र सिद्धलिंगेश्वर ! आप जन्म-मृत्यु से परे हैं। आप स्वयं शून्य में अवस्थित होकर स्वयं भू हो गये। बीज वृक्ष की भांति आप ही निराकार-साकार दोनों हैं

७७. देही निर्गुण इत्युक्तो देहः सगुण उच्यते ।
एवमेव विजानीयाद्वयोर्भेदो न विद्यते ।।
सूक्ष्यागम, क्रियापाद, पटल I श्लो० ३० पृ० ४

७८. यो वै महेश्वर इति प्रोक्तः सर्वजगत्प्रभुः ।
निर्गुण सगुणश्चैव स एवाहं न संशयः ।।
तंत्रसंग्रह क्रियापाद पटल II श्लो० ७ पृ० ५७

७९. बीजवृक्षदन्ते नीनिप्पेयय्या
निराकरवे मूर्तियागि, मूर्तिये निराकारवागि
इंतिवेल्लवनतिगळेदु बयलागिप्पेयय्या नीनु
एन्न कपिलसिद्धमल्लिकार्जुन देवय्या
सिद्धरामेश्वर वचनगळु—वचन १२५९ पृ० ३८९
(ओ मेरे कपिलसिद्धमल्लिकार्जुन देव ! तू बीज-वृक्ष की तरह है। निराकार ही मूर्ति में परिणत है। मूर्ति ही निराकार में परिणत है। इन सबसे परे तू बयलु बना हुआ है।)

८०. एवं तत्स्मृतिमात्रेण मूर्तं सकलरूपधृत् ।
निष्कलं तदभावे तु तस्मात् सकलनिष्कलम् ।
लिङ्गलीलाविलास चरित्र—श्लो०४ पृ० २३

८१. मरनोळगण पत्रे फलंगळु..................
लीलेयादडु मापति, लीले तप्पिदडे स्वयम्भु गुहेश्वरा
अल्लमन वचन चन्द्रिके वचन-१४५ पृ०३४
(पेड़ पर की पत्तियां फल...लीलाहेतु उमापति अन्यथा स्वयंभू गुहेश्वर है...)

८२. द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तंच
बृहदारण्यकोपनिषत् II ३.१ पृ ८६

८३. मैत्रायण्युपनिषत् V ३. पृ० १६४

८४. दी प्रिंसिपल उपनिषद्स पृ० ६५

८५. निश्शून्यं निरवयवं तत्वातीतं निरंजनम् ।
निर्भेदानन्दरूप च निर्नाम तत्वरूपकम् ।।

निश्शून्यं च निरालम्बं च परंज्योतिस्वरूपकम्

....

सर्वशून्यं निरालम्बं निर्द्वन्द्वं परमं पदम् ।

वीरागम अनादिवीरशैवसारसंग्रह में उद्धृत—भाग I श्लोक० ८-१० पृ० ६८

८६. आदिमध्यावसानविल्लदन्दु
आदि अनादि बिन्दु कळेगकिल्लदन्दु
सावय निरवयविल्लदन्दु
तत्व ब्रह्माण्डादि लोकादि लोकङ्गळेनुसनू इल्लदन्दु
नित्यनिरंजन परवस्तु नीनोदेनेयिद्देयल्ल
महालिंग गुरुशिवसिद्धेश्वर प्रभुवे
षट्स्थल ज्ञानसारामृत—वचन-१ पृ० ६
(महालिंग गुरु शिवसिद्धेश्वर प्रभु ।
आदि मध्य-अवसान के न रहने पर
आदि अनादि, बिंदु, कला के न रहने पर,
सावय निरवय के न रहने पर
तत्व, ब्रह्माण्ड, लोक आदि के न रहने पर
नित्य निरंजन परवस्तु तू अकेला ही था तो !

८७. अन्तरविल्लदन्दु बाह्यविल्ल दन्दु
अडि मुडि ओडलु मत्तोन्देडे येनुयेनू इल्लदन्दु
दशदिक्कुगळु विश्वप्रपंचुगळु एनू इल्लदन्नदु
स्थावरजगात्मककंगकिगे आधार कर्तृ खेम्ब नामंगळेनू इल्लदन्दु
सर्व शून्यनिरालम्बनागिर्देयल्ला नीनु
महालिङ्गगुरु शिवसिद्धेश्वर प्रभुवे ॥
षट्स्थल ज्ञानसारामृत वचन—४ पृ० ८
(ओ महालिंग गुरु शिवसिद्धेश्वर प्रभु ।
अन्तर्बाह्य के न रहने पर
नख, शिख, उदर, अन्य अवयव आदि के न रहने पर
दसों दिशाओं और विश्वप्रज्ञाओं के न रहने पर
स्थावर-जंगम आत्माओं के लिए आधार कर्ता
आदि नामों के न रहने पर
तू ही सर्वशून्यनिरालंब बना था ।

८८. दी प्रिंसिपल उपनिषद्स—पृ० ४४८

८९. दी थर्टीन --प्रिंसिपल उपनिषद्स—पृ० ४०५.

९०. शिवं परात्परं सूक्ष्मं नित्यं सर्वगताव्ययम् ।
अनिन्दितमनौपम्यमप्रमाणनामयम् ॥
शुद्धत्वाच्छिवमुद्दिष्टं परादूर्ध्वं परात्परम् ।
....
निर्गुणत्वाद्विशेषेण चानामयमिति स्मृतम् ।
इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तं शिवरूपमिति स्मृतम् ॥
वातुलागम हस्तलिखित प्रति तत्वभेद पटल—श्लोक १९-२२

९१. एक एव शिवस्साक्षाच्चिदानन्दमयो विभुः ।
निर्विकल्पो निराकारो निर्गुणो निष्प्रपंचकः ॥
सिध्दान्तशिखामणि, भाग-I अध्याय V श्लोक ३३

९२. ········गुरुकृपेयाद शरणरिगे
हवणिसलु वारद परब्रह्मवनु
मीरिद निरूपमस्था—
नवनु सूरेय कोट्टनल्लम गिरीजे केळेन्द
प्रभुलिङ्गलीले गति—२५ श्लोक-१६ पृ० ३११.
(गिरिजा । सुनो तो ! जिन शरणों पर गुरु की कृपा हुई, उन्हें अल्ल ने अप्राप्य और परब्रह्मातीत निरुपम स्थान प्रदान किया ।)

९३. निष्क्रियोऽस्म्यविकारोऽस्मि निष्कलोऽस्मि निराकृतिः ।
निर्विकल्पोऽस्मि नित्योऽस्मि निरालंबोऽस्मि निर्द्वयः ।
कुण्डिकोपनिषत् श्लोक-२५ पृ० ४५०.
महोपनिषत् IV ७१ पृ० ३७८.
कठोपनिषत् I ३.१५ पृ० ७.

९४. सर्वशून्यनिरालम्ब, शून्यलिङ्ग, निःकलंलिंग (वचन शास्त्रसार भाग-II पृ० ४-६)
(डा० पी० जी० हलकट्टीजी ने लिंग की त्रिविधि भूमिकाएँ स्थिर की हैं—सर्वशून्यनिरालंब, शून्यलिंग, निष्कललिंग ।
विद्वान् महोदय ने सर्वशून्यनिरालंब का वर्णन करने वाले चार वचन उद्धृत किए हैं, शून्यलिङ्ग का वर्णन करने वाले तीन वचन दिये हैं । इन वचनों के भाव-साम्य से लगता है कि सर्वशून्यनिरालंब और शून्यलिङ्ग में अंतर ढूंढना बेकार है । लगता है कि 'सर्वशून्यनिरालंब' शून्यलिङ्ग का ही लक्षण है । 'अनादिवीरशैवसार

संग्रह' में सम्पादनेसिद्धवीर शिवयोगी के वक्तव्य से इस बात की पुष्टि हो जाती है।)

९५. एवं सर्वशून्यनिरालंबं शून्यलिङ्गं स्वस्य
लीलाविलासचिन्तनेन षट्कलातीतं
वाङ्मानसागोचरं निष्कललिङ्गस्वरूपमासीत् तत्कथमिति चेत्
अनादिवीर शैवसारसङ्ग्रह भाग-I पृ० ७१

९६. प्रथमदल्लि अखण्ड अद्वय अनुपम निरवय
निरंजन सर्वशून्यवनोळकोण्ड सच्चिदानन्द
नित्यपरिपूर्णवप्प निष्कललिङ्गवु······
······तन्न स्वेच्छालीलाविलासद नेनहिनिन्द
शून्यसम्पादने भाग-I (अंग्रेजी) पृ० ४८
(आरम्भ में अखण्ड अद्वय अनुपम निरवय निरंजन सर्वशून्य समाहित सच्चिदानन्द-नित्य परिपूर्ण निष्कल लिङ्ग······अपने स्वेच्छा विलास से संकल्प (नेनहु) से···

९७. शिवोऽस्ति सच्चिदानन्दं परिपूर्णं निरंजनम् ।
अकारणमकार्यं च मनोवाचामगोचरम् ।
वीरागम अनादिवीरशैव सारसंग्रह भाग-I में उद्धृत श्लोक० २ पृ० ७१

९८. कल्लुमठद प्रभुदेयरु, गूळूर सिद्धवीरण्ण तथा अन्य कई विद्वान निष्कल लिङ्ग को पहली भूमिका मानते हैं। वे सर्वशून्य निरालंब या शून्यलिङ्ग की भूमिका के बारे में कुछ भी नहीं कहते। ऐसा लगता है कि इन विद्वानों की राय में परब्रह्म के कुछ अंश के विकास के परिणाम से ही कोई अंतर स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं।

९९. अथातो महोपनिषदं व्याख्यास्यामः
तदाहुः······स एकाकी न रमते—पृ० ३६९

१००. तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति
छन्दोग्योपनिषत् VI २, ३ पृ० ५९

१०१. सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति
तैत्तिरीयोपनिषत् II ६ पृ० २४

१०२. अथैष ज्ञानमयेन तपसा चीयमानोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति
शाण्डिल्योपनिषत् अध्याय III पृ० ३६१

१०३. अरूपं निष्कलं ब्रह्म भावातीतं निरंजनम्।

शब्दादिविषयातीत मूललिङ्गमिहोच्यते ॥
गणभाषितरत्नमाले—पृ० ९५

१०४. निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरद्वय निरंजनम् ॥
श्वेताश्वतरोपनिषत् VI १९ पृ० १२९

१०५. निष्कलं निर्गुणं शान्तं निर्विकारं निराश्रयम् ।
निर्लेपकं निरापायं कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥
योगशिखोपनिषत् III २१ पृ० ४०२

१०६. निष्कले निष्क्रिये शान्ते निरद्वये निरंजने ।
अद्वितीये परे तत्वे व्योमवत्कल्पना कुतः ॥
आत्मोपनिषत् श्लोक ३० पृ० ४५३

१०७. इन्तु अंतप्प अखंडाद्वय नित्य निरवय परिपूर्ण सच्चिदानंदवप्प
निष्कनलिङ्गवु······तन्न स्व इच्छालीलाविलासदोरि नेनेदु नेनेहु मात्रदल्लिये
तन्न चित्प्रभासामर्थ्यशक्तिय सुंदुगोंडु अखंड
तेजोमूर्तियप्प महालिङ्गवाइतु
लिङ्गलीलाविलास चारित्रः महालिंगस्थल पृ० १२
(महालिङ्ग अखण्ड अद्वय नित्य निरवय परिपूर्ण सच्चिदानन्द निष्कललिङ्ग है···अपने स्वेच्छाविलास से किये (नेनहु) संकल्प से ही अपनी चित्प्रभासामर्थ्य शक्ति के सहारे अखण्ड तेजोमूर्ति होता है।)

१०८. आद्यन्त शून्यममलम् परिपूर्णमेळम् ।
सूक्ष्मम् परात्परमनामयमप्रमेयम् ।
भावैकगम्यमजडम् शिवतत्वमाहुः ।
चिच्छक्ति संस्फुरणरूद महात्मलिङ्गम्
किम् चैतेषाम् स्थलानाम् तु प्रादुर्भावे प्रदर्शिते ।
शिव एव स्वचिच्छक्त्या महालिङ्गस्थलम् भवेत् ।
उत्तरवातुलागम, अनादिवीरशैवसारसंग्रह में उद्धृत भाग-I श्लोक १२-१३ पृ० ७७

१०९. मोदलु निःकलब्रह्मयु, आ निःकलब्रह्मादिदं ज्ञान चित्तु, आ चित्तिनिंद चिन्नाद चिद्बिंदु चित्कळेगळु पुट्टिदवु। आ चिन्नाद चिद्बिंदुचित्कळे मूल चित्तेव चतुर्विधवु गट्टिगोंडु अखंड गोळाकार तेजोमूर्तियप्प महालिङ्गवायित्तु.
वचनशास्त्रसार भाग-II पृ० ४९
(आरंभ में निष्कल ब्रह्म हुआ। उस समय निष्कल ब्रह्म से ज्ञान-चित्त का

विकास हुआ। उस ज्ञान-चित् से चिन्नाद, चिद्-बिंदु, चित्-कला इनका उन्मेष हुआ। चिन्नाद, चिद्बिंदु, चित्कला, मूलचित्त ये चारों घनीभूत होकर अखंड गोलकाकार की तेजोमूर्ति महालिङ्ग में परिणत होते हैं।)

११०. एवम् सर्वतत्ववर्णातीतम् निष्कलपरशिवलिंगम् स्वस्य लीलाविलासेन··· ततश्चितः सच्चिदानंदात्मक कलाप्रणवानादि मातृप्रणव संज्ञक चिन्नाद चिद्बिंदु चित्कलामिश्रीभूतम् सत् शुद्ध प्रसाद प्रणवनामकाखंड गोलकाकारतेजोमूर्ति स्वरूप महालिंगस्वरूपत्वात् अग्रे महालिंगस्थलमासीत्।
अनादिवीरशैव संग्रह—भाग-I पृ० ७५

१११. नीवु निम्म स्वलीलेयिदं जगद लीलावैभवंगळ नटिसबेकेंदु निम्नल्लि नेनहुदोरलु, आ नेनहु निर्धरिसि चित्तनिसित्तु। आ चित्तिनिंदा चिन्नाद चिद्बिंदु चित्कळेगळोगेदवु। आ चिन्नाद चिद्बिंदु, चित्कळे आ मूलचित्त सहितवागि घट्टिगोंडु अखंडगोलकाकार तेजोमूर्तियप्प महालिंगवायित्तु······ ईतिवेल्लदु निम्म नेनहुमात्रदिंदावय्य अखंडेश्वरा
अखंडेश्वरवचनगळु I। पृ० ३
(हे अखण्डेश्वर! स्वलीला से जगत् के लीला-अभिनय हेतु आप में संकल्प (नेनहु) हुआ। उस संकल्प के अनुरूप चित् का विकास हुआ। उस चित् से चिन्नाद, मूलचित् आदि चारों घनीभूत होकर अखण्ड गोलकाकार की तेजमूर्ति महालिंग में परिणत होते हैं। इस प्रकार ये सब आपके संकल्प (नेनहु) मात्र से संभव हुआ।)

११२. ओमिति ब्रह्म तै० उपनिषत् I 8, 1 पृ० 21
ओमित्येकाक्षरम् ब्रह्म ध्यानबिन्दूपनिषत् श्लोक 9 पृ० २४५
ओमित्येतदक्षरम्···· परम् ब्रह्म—अथर्वशिखोपनिषत् I पृ० १५
ओमिति ब्रह्म—नारदपरिव्राजकोपनिषत् VIII पृ० २७८
और उसमें आगे कहा गया है—सर्वाक्षरमयः कालः सर्वागममयः शिवः—वही-VIII 2 पृ० २७९
प्रणवारूढनु प्रणवस्वरूपनु प्रणव प्रकृति संज्ञनु प्रणव षडंग समरस नाम्म कूडलसंगमदेवरू
लिंगलीलाविलासचारित्र वचन 6 पृ० ३३
अपने कूडलसंगमदेव प्रणवारूढ प्रणवस्वरूपी प्रणव प्रकृति संज्ञा से युक्त षडंग समरस है।

११३. निःकल शिवतत्वदल्लि ज्ञानचित्तु, उदयवायित्तु ।
आचित्तिनिंद अकार उकार मकारंगळेंब अक्षरत्रयंगळादवु ॥
अकारवे नाद, उकारवे बिंदु, मकारवें कळे'''इंति त्रिविधक्के
तायि चित्तु । इंती नाल्कु ओंदादल्लि ओंकारवेंब प्रणव
उत्पत्तियायित्तु, आ ओंकारवेंब प्रणववे अखंड परिपूर्ण
गोळकाकार तेजोमूर्तियप्प महालिंग नोडा महालिंग गुरुसिद्धेश्वर प्रभुवे
षट्स्थल ज्ञानसारामृत ३३ पृ० १८
(हे महालिङ्ग गुरुसिद्धेश्वर प्रभु ।
निष्कल शिवतत्व में ज्ञान-चित् उदित हुआ । उस चित् से अकार, उकार-मकार अक्षर-त्रय का विकास हुआ । नाद ही अकार है, बिंदु ही उकार है, कला ही मकार है । अतः इन तीनों का मूल है चित् । इन चारों के मिलने से ओंकार प्रणव की उत्पत्ति हुई । वह ओंकार प्रणव ही अखंड परिपूर्ण गोलकाकार तेजो-मूर्ति महालिङ्ग है ।)

११४. वीरशैव तत्वप्रकाश में उद्धृत

११५. निष्कलम् निष्क्रियम् शांतम् निरद्वम् निरंजनम् ।
प्रत्यस्तमितभेदम् यत्सत्तामात्रमगोचरम् ॥
वचसामात्ममवेद्यम् तन्महालिंगमुच्यते ॥
चन्द्रज्ञानागम के० पी० III श्लोक २० पृ० १६

११६. नादरूपः शिवः साधालिंगमित्यभिधीयते ।
तत्पीठिका महाशक्तिः सा च वै बिंदुरूपिणी ॥
तयोः सम्मेलनाद्देवि कला तत्र प्रतिष्ठिता ।
तस्यालिंगमिति स्यातम् नादबिंदुकलात्मकम् ॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद VI श्लोक ३-४ पृ० ३८

११७. महालिङ्गम् त्रिधा जातम् सुजनानुजिपृक्षया ।
प्रथमम् भावलिंगतु द्वितीयम् प्राणलिंगकम् ।
तृतीयमिष्टलिंगम् स्यादित्येवम् त्रिविधम् मतम् ॥
चन्द्रज्ञानागम—क्रियापाद III २३ पृ० १६

११८. अस्ति कश्चित्स्वतस्सिद्धः सच्चिदानन्दलक्षणः ।
एको रुद्रः परंज्योतिः परमात्मा सनातनः ।
तंत्र संग्रह पटल I श्लोक १६-१८ पृ० ५३

११९. इब्बरू मूवरू देवरेंदु उब्बि मातनाडवेड ।

ओव्बने, काणिरो, इब्बरेंवुदु हुसि नोडा।
कूडल संगमदेवनल्लवे, इल्लवेंवित्तु वेद।
बसवण्ण नवर वचनगळु—व ५४७ पृ० १४३
(अभिमान के अतिरेक से न बोलो कि ईश्वर दो हैं, तीन हैं। ईश्वर एक है। उसे दो मानना मिथ्या मात्र है। कूडलसङ्गमदेव ही वह है। वेद भी यह कहते हैं।

१२०. एकमेव परम्ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।
शिवानुभसूत्रम् II २ पृ० १६

१२१. व्याप्यकृत्स्नम् स्थितो लोकाननन्तादिशिवान्तकान्।
एकान्तावस्थितो ह्येषः शिवशक्तिसमन्वितः।
निश्वासकारिका हस्तलिखित प्रति—पृ० ५४२
इंस्तित्यूत फ्रांसाइस दी इंदालजी—पांडिचेरी
विश्वदोळगेल्ल नीने देवा, विश्वभरितनु नीने देवा
विश्वरूपनु नीने देवा, विश्वपति नीने देवा
विश्वातीतनु नीने देवा, अखंडेश्वरा
वचनशास्त्रसार भाग I पूर्वार्द्ध—व—३ पृ० १०
(हे अखण्डेश्वर ! विश्व में सर्वत्र तू ही व्याप्त प्रभु है ! विश्व का भरण तुझसे ही है प्रभु ! विश्वरूप तू ही है प्रभु ! विश्वपति भी तू है। विश्वातीत भी तू है।)

१२२. जलदोळगण सूर्यनंतिर्पनय्या शिवनु। लोकादिलोकंगळोळगिर्दडेनु,
जगद पुण्य पाप स्वर्ग नरक बंध मोक्षकोळगादातने ?
अल्ल···इदु कारण नम्म उरिलिंगपेद्दिप्रिय
विश्वेश्वरनु विश्वदोळगे होद्दियू होददिरबल्ल। विश्वाधिपतियागलू बल्ल—
वचनशास्त्रासार भाग-I पूर्वार्द्ध व-२ पृ० २३
(विश्व जल में प्रतिबिंबित सूर्य के समान हैं। समस्त लोकों में व्याप्त रहने से क्या है ! जगत् के पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, बंध-मोक्ष आदि से वह प्रभावित थोड़े है ! भाई मेरे ! इसी से अपने पुरिलिङ्ग पेद्दि प्रिय विश्वेश्वर विश्व में व्याप्त होकर भी उससे अलिप्त रह सकता है। विश्वादिपति भी बन सकता है।)

१२३. देखो-प्रसाद—पृ० १००

१२४. तस्माल्लिगम् परम्ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ।
सिद्धांतशिखामणि XII ४१ पृ० १६६

१२५. लिङ्गवेंबुदु सर्वकारण निर्मल
लिङ्गवेंबुदु सच्चिदानंद नित्यपरिपूर्ण
······इंती लिङ्गद मर्मवनरिदवने
अरिदवनु निजगुरु स्वतंत्रसिद्धलिंगेश्वर
स्वतंत्रसिद्धलिंगेश्वरन वचनगळु व १७१ पृ० ४५
(लिंग सर्वकारण निर्मल है ।
लिंग सच्चिदानन्द नित्यपरिपूर्ण हैं ।
स्वतंत्रसिद्धलिंगेश्वर कहते हैं कि लिंग का मर्मज्ञ ही वास्तव में गुरु है ।)

१२६. अणुविगे अणु, महत्तिगे महत्तु
वचनधर्मसार व-७ पृ० २४
(अणोरणीयान् महतो महीयान्)

१२७. 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सः'
एंदेनिसुव लिंगवु, 'अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्'
एंदेनिसुव लिंगवु, 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' एंदेनिसुव लिंगवु
....

आहा एन्न पुण्यवे आहा एन्न भाग्यवे ।
आहा एन्न सत्यवे
एन्न नित्यवे शिव शिव महादेव
नीने बल्लिरि उरिलिंगपेद्दिप्रिय विश्वेश्वरः
लिंगलीला विलासचारित्र—व ७८ पृ० १५०
(हे उरिलिंगपेद्दिप्रिय विश्वेश्वर !
यह अपना पुण्य मानूं । अपना भाग्य सराहूं । सत्य समझूं । नित्य जानूं ।
शिव शिव महादेव ! आप ही जानें ।)

१२८. शिवोऽस्ति सच्चिदानन्द परिपूर्ण निरंजनः ।
अकारणमकार्यं च मनोवाचामगोचरः ।
गणभाषितरत्नमाले— पृ० ६०
(हे उरिलिंगपेद्दिप्रिय विश्वेश्वर । साकार का अर्चन—पूजन विहित है । निराकार का कोई भरोसा नहीं । श्रीगुरु जब प्राणलिंग को करस्थल में रख

देते हैं तब वज्र में बयलु ए ढूंढना कहां तक ठीक है !)

१२९. 'साकारविडिदु अर्चने पूजनेय माडवेवल्लदे, निराकारव
नेवलागदु श्रीगुरु प्राणलिंगवनु करस्थलक्के विजयंगेसिकोट्ट बळिक
वज्रदल्लि बयलवरसुलुण्टे उरिलिङ्गपेद्दिप्रिय विश्वेश्वरा
शून्यसंपादने—व २३ पृ० २१६

१३०. 'दीक्षा' का विवरण' 'दीक्षा' शीर्षक मेरे लेख में देखिए।
महाप्रभु जगद्गुरु श्रीशिवरात्रीश्वर महास्वामीजी, सुत्तूरमठ,—मैसूर
अभिनंदन ग्रंथ में लेख प्रकाशित है—पृ० ८९-१०७

१३१. शक्तिपातम् समालोक्य दीक्षया योजयेदमुम्।
दीयते च शिवज्ञानम् क्षीयते पाशबंधनम्।
सिद्धांतशिखामणि VI ११ पृ० ५८

१३२. तनुत्रयगतानादिमलत्रयविशोधनाः।
लिंगत्रयानुसंधान विशोधित भवाब्धयः।
मकुटागम क्रियापाद II 11 पृ० 12

१३३. सर्वोत्तमोत्तमम् लिंगम् सर्वाभीष्टदायकम्।
यद्दत्तम् गुरुणा देवि लिंगं तदहमेव हि।।
तंत्रसङ्ग्रह में पारमेश्वर तंत्र—पटल II श्लोक १२ पृ० ११६

१३४. अंतरंगदोकिर्द निरवयलिंगवनु सावयलिंगव माडि श्रीगुरुस्वामि
करस्थलक्के तंदु कोट्ट
अखंड परिपूर्णवप्प निजवु ताने कूडलसंगमदेव......
बसवण्णनवर वचनगळु (हेच्चिन वचनगळु) व-२ पृ० ५४
(अंतरंग में रहे निरवयलिंग को श्रीगुरुस्वामी ने सावयलिंग में परिणत कर करस्थल में रख दिया। कूडलसङ्गम देव ही अखण्ड परिपूर्ण सत्य है।)

१३५. इष्टलिङ्गे ततो नित्यम् पूजनीयः परशिवः
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल III श्लोक ३२ पृ० २०
(सिद्धरामय्य कहते हैं कि प्राणलिंग का प्रसन्न मुख दिखाई पड़े, कर तेज-रूपी दर्पण हाथ में लिया है। गुहेश्वरलिंग में साक्षात्कार करने पर सांसारिक संस्कार समूल नष्ट हो जाते हैं।

× × ×

रामनाथ कहते हैं कि यहि करस्थल की ज्योति है।

१३६. प्राणलिंगद प्रसन्न मुखव परिणमिसलोसुग,

करतेजवेंब दर्पणव हिडिदिर्पनु ओडा।
गुहेश्वरलिंगदल्लि निजवनैदिहेनेन्दरे
कुरुहुविडिदु कुरुहुगेडबेकु काणा सिद्धरामय्या
वचनगळल्लि वीरशैवधर्म—पृ० २२६
करस्थलद ज्योतियदु करुविठ्टेरकवदु
....
होलदुदोरदिह निस्सीमन होलबनरिदु कूडिदातने मृडनु काणा रामनाथा।
शून्यसंपादने—व २१ पृ० १८६
(वह करस्थल की ज्योति है...ए० रामनाथ।
निस्सीम की जानकारी का मार्ग जानने वाला ही मृड है।)

१३७. एल्लेल्लि नोडिदडल्लल्लि नीने देवा
पिण्डाण्डंगळोळगेल्ल नीने देवा
....
निजगुरु स्वतंत्र सिद्धलिंगेश्वर
वचनशास्त्रसार भाग-I पूर्वार्द्ध व-१२ पृ० १२
(ए गुरु स्वतंत्र सिद्धलिंगेश्वर।
जहाँ देखूँ वहाँ तू है। पिण्डाण्ड में तू ही है।)

१३८. मस्तकदमेले हस्तवनिट्टु निजवस्तुवा तेगेदु हस्तपीठदोलिळट्ट स्वस्ति श्रीगुरुवे क्रिपेयागु—मैलारद श्रीवसवलिङ्ग शरणर कृतिगळु—पृ० ४८
(मस्तक पर हाथ रखते हुए सत्य को हस्तपीठ पर रखने वाले गुरु की जय है उनकी कृपा बनी रहे।)

१३९. 'शून्य संपादने' (अंग्रेजी संस्कारण अध्याय X पृ० २०९-२४१) को एक अध्याय में शरणों द्वारा इष्टलिङ्ग धारण व पूजन की अनिवार्य आवश्यकता वर्णित मिलती है।

१४०. लिंगवेंबुदु सर्वकारण निर्मल
....
लिंगवेंबुदु जन्मवारिधिय दाण्टिसुव भैत्रवु
....
स्वतन्त्र सिद्धलिगेश्वर वचनगळु
(लिंग सर्वकारण निर्मल है। लिंग भवसागर को पार करने की नौका है। स्वतंत्र सिद्धलिंगेश्वर वचन।)

१४१. संस्कृत में नन्दिवेश्वर रचित 'लिंगधारण चंद्रिका' एक महत्वपूर्ण रचना है। उसमें लिंग-धारण की आवश्यकता और उससे प्राप्त फल वर्णित है। देखो लिंगधारण चंद्रिका—ते—नंदिकेश्वर—सं० प्रो० एम० आर० सासरे एम० ए० टी० डी० (कैंटब) oot. 1942

१४२. लिंगस्य धारणम् पुण्यम् सर्वपापप्रणाशनम्
आहृतम् मुनिभिस्सर्वैः रागमार्थविशारदैः॥
सिद्धांतशिखामणि—भाग-I अध्याय VI श्लोक-८ पृ० ६०

अध्याय 2

जीवात्मा की कल्पना

जीवात्मा आत्मन् माना जाता है। 'अन्' (साँस लेना) धातु से इसकी व्युत्पत्ति मानी गई है। आत्मन् शुरू में साँस का पर्याय था। और पीछे वह आप या जीवात्मा के लिए रूढ़ हो गया। शंकराचार्यजी ने आप्नोति, अत्ति और अतते इन तीन शब्दों से इसे व्युत्पन्न माना है। उपनिषदों और वीरशैव मत में जीवात्मा 'आत्मन्' माना गया है।

जीवात्मा को 'पुरुष' भी कहा गया है जिसका आशय 'हृदयस्थ' है। कई उपनिषदों में वर्णित है कि जीवात्मा (पुरुष) हृदय के एक छोटे कोने में रहता है। वीरशैव मत में 'पुरुष' जीवात्मा के लिए प्रयुक्त मिलता है। परब्रह्म को सूचित करने के लिए 'आदिपुरुष' और 'परमपुरुष' इन पदों का प्रयोग मिलता है। वेदों और उपनिषदों में परब्रह्म के लिए 'पुरुष' पद का भी व्यवहार हुआ है।

जाबाल्युपनिषद् और भस्मजाबाल्युपनिषद् में जीवात्मा के लिए 'पशु' पद का प्रयोग भी मिलता है। व्यष्टि के लिए 'जीव' और 'पंचविंशक' पदों का व्यवहार भी होता है।

उपनिषदों[14] और वीरशैव मत में जीव के लिए 'पंचविंशक' पद का प्रयोग मिलता है। जीव को द्योतित करने के लिए चित्यागम में क्षेत्रज्ञ, पुरुष, पंचविंशक आदि पद प्रयुक्त मिलते हैं। जीव को सूचित करने के लिए वीरशैव धर्मशिरोमणि में अणु, आत्मा, जीव, पशु, पुग्दल, क्षेत्रज्ञ और पुरुष ये सात पद मिलते हैं। वीरशैव मत में जीव को सूचित करने के लिए दो पद 'पिंड' और 'अंग' हैं जो विशेष महत्त्व रखते हैं।

पूर्वजन्म के सुकृतों के फलस्वरूप परिशुद्ध अंतःकरण वाला और कलंक तथा पापरहित जीव या आत्मा 'पिंड' कहा जाता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि सत्कर्म करनेवाला भला आदमी होता है।

संगीत में 'पिंड' अनाहत नाद का पीठ माना गया है। 'पिंड' अनाहत नाद या शब्दब्रह्म का पीठ है और शरीर में नाभि के नीचे उसका अस्तित्व है। तंत्रशास्त्र में इसे मूलाधार कहा गया है। वीरशैव शरणों ने एक विशिष्ट अर्थ में जीव के महोन्नत

सोपान को सूचित करने के लिए—'पिंड' पद का प्रयोग किया है। वेदान्तसार—वीरशैव चिंतामणि में पिंड के कई और लक्षण बताये गये हैं। उसके अनुसार पिंड वह है जो सत्कम के फलस्वरूप कलंक रहित है। ईश्वरीय अनुकम्पा से भक्ति-भावित है और इस जीवन के बाद मुक्ति का अधिकारी है। भगवद्गीता में जन्मांतरों के बाद ईश्वर-प्राप्ति में सफल होनेवाले ज्ञानी के लक्षणों से इसकी तुलना की जा सकती है।

संक्षेप में 'पिंड' वह माना जा सकता है जो पवित्र है, कलंक रहित है, पाप-शून्य है, परिशुद्ध अंतःकरणवाला है और ईश्वर की अनुकंपा से भक्तिभावित है।

पिंड के आदिपिंड, मध्यपिंड और अनादिपिंड नाम से त्रिविध भेद हैं। वे क्रम से जीवपिंड, सुज्ञानपिंड और चित्पिंड भी कहे गये हैं। आदिपिंड के फिर स्थूलपिंड, सूक्ष्मपिंड और कारणपिंड के नाम से तीन भेद किये गये हैं। यह संभवतः त्रिविध शरीर पर आधारित वर्गीकरण है।

अपनी गहरी भक्ति से लिंग के साक्षात्कार के लिए यत्नशील जीवात्मा 'अंग' कहा जाता है। वीरशैव दार्शनिकों ने 'अंग' पद की व्याख्या इस प्रकार की है जिससे उसके दार्शनिक महत्व पर प्रकाश पड़ता है। 'अं' परब्रह्म का द्योतक है। 'गम्' लिंग के साक्षात्कार के लिए सतत गतिशील जीवात्मा का प्रतीक है। अतः ईश्वर के तादात्म्य स्थापित करने के लिए लगन और निष्ठा के साथ प्रवृत्त जीवात्मा 'अंग' माना जा सकता है।

शिवाद्वैतदर्पण[26] में स्पष्ट कहा गया है कि सभी जीव 'अंग' बनने योग्य नहीं। सत्कर्म से कलंक मुक्त तथा नियम से शिव की उपासना द्वारा उसकी अनुकंपा के फलस्वरूप परिशुद्ध अंतःकरणवाला जीवात्मा ही 'अंग' है। ऐसे साधक की सीमित शक्ति अनुपम भक्ति में परिणत हो जाती है।

'तत्वमसि' उपनिषद् का एक महावाक्य है। 'अंग'—इसी त्वम् का पर्यायवाची भी माना गया है। उरिलिंगपेद्दि एक उद्दाम पंडित और शरण हुए हैं। उन्होंने यह व्याख्या की है कि 'तत्' परमात्मा, 'लिंग' का प्रतीक है, 'त्वम्' 'अंग' का द्योतक है और 'असि' तादात्म्य का पर्याय है। इस प्रकार 'तत्व मसि' 'लिगांग संयोग' अर्थात् 'लिंगांगसामरस्य का समकक्ष भी माना गया है। वीरशैवदर्शन में लिंगांग सामरस्य चरम पुरुषार्थ है।

भरितोंटदार्य तथा मायिदेव जैसे वीरशैव तत्व-चिंतकों ने जीव को को शिव का अंश माना है। अतः जीव परिशुद्ध, शाश्वत और कलंकरहित है। अतः जीव, वास्तव में, शिव ही है। वेदान्तसूत्रों के भाष्यकार श्रीपति पण्डित ने जीव

को ब्रह्म का ही अंश माना है। ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखनेवाले नीलकंठ शिवाचार्य का कहना है कि जीव शिव का ही अंश है। और वह शिव से उसी प्रकार फूटा है जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग। ब्रह्मसूत्र में बादरायण ने जीव को परब्रह्म का अंश बताया है। गीता भी इससे सहमत है। रामानुजाचार्यजी तथा नीलकंठ दोनों के मत इस नाते मिलते हैं कि जीव परब्रह्म का अंश है। अग्नि से स्फुलिंग की भाँति जीव को ब्रह्म से निकला एक मानें तो दूसरा उसे अग्नि से प्रकाशवत् मानता है। श्रीकंठ भी जीव को ब्रह्म का अंश मानते हैं। वे आगे कहते हैं कि जिन ग्रन्थों में उनका अभेद प्रतिपादित है वे ब्रह्म द्वारा जीव को व्याप लेने का ही प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इस व्याप्ति के कारण ब्रह्म दोनों के लिए प्रयुक्त होने लायक पद बन जाता है। इसी प्रकार अग्नि से व्याप्त शिखा भी अग्नि ही है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी जीव ब्रह्म का अंश माना गया है।

तोण्टद सिद्धलिंग शिवयोगीजी का कहना है कि जीव ईश्वर की चित्-शक्ति का ही अंश है। कल्लुसठ के प्रभुदेवजी भी इसे मानते हुए कहते हैं कि जीव का अवयव पाँच सादाख्यों से निःसृत तत्वों से बना है। गुळूर सिद्धवीरणार्य का कहना है कि ईश्वर ने निज लीला हेतु अपने में जीव का सृजन किया है।

आरम्भ में निष्कललिंग अविभाज्य था, अद्वितीय था, असदृश था, अंशरहित था, कलंकहीन था, उसी में शून्य अर्थात् सत्, चित, आनन्द, शाश्वतता, पूर्णता, आदि अंतर्भुक्त होंगे। वह अखंड शून्य दशा में ही रहना न चाहता था। उसे ध्यान या उपासना की कोई आयश्यकता न थी। उसने अपनी सहज लीला या विनोदहेतु अपनी चित्शक्ति का प्रकाश फैलाया और अपने में अनन्त ब्रह्माण्डों और अगणित पिंडाडों का सृजन किया। जब उसने उसके साथ पच्चीस श्रेणियाँ जोड़ दीं तब वे अपनी आकृति का समर्थन करने की चेष्टा में जाति, संप्रदाय, आयु की अनिवार्य अवस्थाएँ, वंश, कुल, नाम (इतर) सीमाएं, सुख-दुःख, बंधन व मुक्ति आदि का शिकार हुईं। वे अपना स्वभाव भूल गईं तो उसने उन्हें मृत्यु और प्रलोभन का दास बना दिया। पर शिवलिंग उनके सुख-दुःख, बंधन-मुक्ति आदि से निर्लिप्त होकर सूत्रधार की भाँति उन्हें नचा रहा है।

उपर्युक्त वचन से तीन बातें स्पष्ट होती हैं। ईश्वर की लीला हेतु या विनोद के लिए विश्व का विकास हुआ है। आत्मा या जीव उसी का चित्-शक्ति से पैदा हुआ है। ईश्वर सुख-दुःख से परे है। जगत् की गतिविधियों से वह अप्रभावित है।

'सिद्धान्त शिखामणि' में इसी भाव का अधिक विस्तार हुआ है। शिव विमर्श-शक्ति या चित्शक्ति के साथ पहले ही था। यह विमर्श या चित्शक्ति उसमें सदा

से रही है। शिव की ही भाँति शिव की विमर्शशक्ति भा सत्, चित्, आनन्द, इन तीन गुणों से विभूषित थी।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में शिव की शक्ति के अमित प्रताप का वर्णन मिलता है। वहाँ उसके तीन गुणों से युक्त होने की बात भी कही गई है। उपनिषदों में कहा गया है कि मनीषी और ध्यानी स्वगुणेर्निगूढ़ परब्रह्म के आत्मतेज का साक्षात्कार करते हैं। इन तीन गुणों के प्रताप से परब्रह्म का अखण्ड चैतन्व भोक्ता, भोज्य और प्रेरक तीनों हो जाता है। अतः ये तीनों शिव के ही अंश है। उपनिषद् में कहा गया है कि भोक्ता जीवात्मा भोज्य पदार्थ और प्रेरक ईश्वर ये तीनों ब्रह्म के ही अंश हैं।

ऋग्वेद, मुण्डक और श्वेताश्वतर इन तीनों में एक ही वृक्ष पर रहे दो पक्षियों का वर्णन मिलता है। उनमें एक पक्षी भोक्ता जीवात्मा है जो फल खाता है और दूसरा तटस्थ दर्शक ईश्वर है। फल खाने से उसका कोई मतलब नहीं है।

सिद्धान्तशिखामणि में आगे कहा गया है कि शुद्धसत्व के प्रभाव से ब्रह्म का अखण्ड चैतन्य ईश्वर हो गया है। थोड़े सत्व और तमस से मिश्रित रजोगुण के प्रभाव से ब्रह्म का वही अखण्ड चैतन्य जीवात्मा बन गया है। अत्यन्त तामसोपाधि के प्रभाव से वही अखण्ड चैतन्य भोज्य पदार्थ बन गया है। उक्त कारणों से वीरशैव धर्म ईश्वर, जीवात्मा और जगत् को सत्य मानता है।

वीरशैव धर्म में माया के दो रूप माने गये हैं जैसे शुद्धमाया (महामाया) और अशुद्ध माया। अशुद्ध माया या अविद्या के प्रभाव से शिव का ही अंश जीव में परिणत हो जाता है। मुण्डकोपनिषद् में भी कहा गया है कि अग्नि से हज़ारों चिनगारियां जिस प्रकार छूटती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म से विविध आकृतियों के जीव प्रकट होते हैं, मैत्र्युपनिषद् में भी यह वर्णन मिलता है कि ब्रह्म से ही समस्त जग, जीव, वेद आदि विकसित है।

जीवात्मा और परमात्मा के बीच का सम्बन्ध क्या है ?

दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिपादकों ने अपने सम्प्रदाय का विभिन्न निरूपण उपनिषदों के ही आधार पर किया है। ये प्रतिपादक आचार्य उपनिषदों के वाक्यों के सहारे अपने निष्कर्ष निकालते हैं या अपने निष्कर्षों के अनुकूल उपनिषदों के वाक्यों का अर्थ लगाते हैं। अतः जीवात्मा-परमात्मा संबंधी सभी उक्तियों पर विचार करने की आवश्यकता है। उनके पूर्वापर विवेचन के बाद कोई निष्कर्ष निकालना पड़ता है। इससे उन दोनों के बीच रहे साम्यवैषम्य का हमें सही-सही बोध होता है।

आत्मन् (जीवात्मा) और ब्रह्म (परमात्मा) के बीच का अन्तर सूचित करने

वाले कई वक्तव्य उपनिषदों में मिलते हैं। उदाहरण के लिए बृहदारण्यक[64] को लीजिए। उसमें कहा गया है : मैत्रेय ! आत्मा रे द्रष्टव्यो श्रोतव्यो मंतव्यो निधिध्यासितव्यो।'

यहाँ लक्ष्य ब्रह्म ही है। आत्मा ही ब्रह्म को लक्ष्य बनाता है। 'श्वेताश्वतर' में कहा गया है—दो प्रकार के अजन्मा हैं—ज्ञाता (ईश्वर) और अनजान (आत्मा)। एक सर्वसमर्थ है और दूसरा असमर्थ है।'' यहां भी आत्मा (जीवात्मा) और ब्रह्म (परमात्मा) का ही स्वरूप वर्णित है। इससे दोनों में अंतर जाना जाता है। नारदपरिव्राजकोपनिषद् में भी यही विचार दिखाई देता है।

छान्दोग्य में कहा गया : 'जीव (आत्मा) पापरहित है, उसकी आयु में कोई घटती-बढ़ती नहीं है'''ब्रह्म (आत्मा) ही गंतव्य है और वही ज्ञातव्य है। यहाँ ब्रह्म ही जीव का ध्येय है, ज्ञान का लक्ष्य है। इस प्रकार उक्त कथनों में आत्मा और ब्रह्म के बीच रहने वाला अंतर दिखाई देता है। कठ, मुण्डक आदि उपनिषदों में भी ऐसे कथन हैं जो आत्मा और ब्रह्म में अंतर सूचित करते हैं।

उपनिषदों में हमें ऐसे भी कई वक्तव्य मिलते हैं जैसे आत्मा ब्रह्म है। छांदोग्य में 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्य आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता पर जोर देते हैं। तेजोबिंदूपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषद्, अन्नपूर्णोपनिषद् आदि में इससे मिलते-जुलते वक्तव्य हैं जो आत्मा और ब्रह्म का अभेद व्यक्त करते हैं।

इस प्रकार उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म के बीच द्वैत तथा अद्वैत भाव को समर्पित करने वाले कई वक्तव्य मिलते हैं।

शंकराचार्य जी ब्रह्म और जीव में अभेद संबंध मानते हैं और अद्वैत का समर्थन करते हैं। मध्वाचार्यजी जीव और ब्रह्म को अलग स्वीकारते हैं। और द्वैत मत की स्थापना करते हैं। रामानुजाचार्यजी जीव और ब्रह्म को विशिष्ट रूप से अभिन्न मानते हैं।

वीरशैव शरण और चिंतक दार्शनिक जीव-ब्रह्म का संबंध दूसरे तरीके से व्यक्त करते हैं। उपनिषदों में परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले वक्तव्य वास्तव में जिस एक सत्य का प्रतिपादन करते हैं, उस सत्य का अनुभव वीरशैव शरणों को हुआ है। शरणों ने कहा है कि जीवात्मा और परमात्मा के बीच का अंतर केवल आरम्भ में ही मानना चाहिए। उपनिषदों में द्वैत का संकेत जो मिलता है उसे इसी आरम्भ का द्योतक मानना चाहिए। पर जब जीव अपना स्वरूप जानते हुए आध्यात्मिक साधना में प्रवृत होता है तो क्रम से यह अंतर कम होता जाता है। आध्यात्मिक साधना में तथा आवरण जैसे इतर साधनों के फलस्वरूप जीव लिंग से एकरूप अवश्य होता है। क्योंकि उन साध-

नाओं में भक्ति ही प्रधान है। अतः उत्तरोत्तर क्रम से जीव (आत्मा) और लिंग (ब्रह्म) में तादात्म्य स्थापित होता है। अतः उपनिषदों में अद्वैत को द्योतित करने वाले जो वक्तव्य मिलते हैं वे जीव और ब्रह्म के इसी अभेद या तादात्म्य का संकेत करते हैं। श्रीपति पंडित ने अपने 'श्रीकरभाग्य' में जीव और ब्रह्म में भेदभाव का समर्थन किया है। उन्होंने आगे कहा है कि आरम्भ में जीव ब्रह्म में भेद की कल्पना और अंत में बंधन-मोचन के बाद अद्वैत (अभेद) की कल्पना श्रुति के मेल में है। वीरशैव धर्म जीव और ब्रह्म में पूर्ण सामंजस्य की घोषणा करता है। 'सिद्धान्त शिखामणि' में भी इस पूर्ण सामरस्य का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

वीरशैव शरणों ने आरम्भ में जीव और ब्रह्म में भेद माना है और अंततोगत्वा अभेद स्वीकार किया है। इन दोनों में वास्तव में अंतर क्या है और क्यों है—यह सवाल उठ सकता है।

शिवाद्वैतदर्पण में इस अंतर का कारण दिया गया है। 'शिवाद्वैत' पद की व्याख्या करते समय कहा गया है कि 'शिवश्च शिवश्च शिवौ तयोः अद्वैतम् शिवाद्वैतम्'। यहाँ पहला पद 'शिव' 'ब्रह्म' का द्योतक है और वह 'सूक्ष्मचिदचिद्रूपशक्ति' से युक्त है। दूसरा पद 'शिव' जीव का द्योतक है और वह 'स्थूलचिदचिद्रूपशक्ति' से युक्त है। इस दशा में सहज ही जीव और शिव में स्थूलतत्व मलत्रयविशिष्टत्व ही है। दूसरे शब्दों में कहना हो तो कह सकते हैं कि जीव मलत्रय से मलिन रहता है। 'किरणागम' में भी कहा गया है कि जीव मलत्रय से मलिन है। जीव मलत्रय की मलिनता से छूटते ही शिव हो जाता है।

शिवानुभवसूत्र में कहा गया है कि अपनी शक्ति के संकोच के कारण शिव ही लिंगस्थल और अंगस्थल में परिणत हो जाते हैं। शिवाद्वैतमंजरी लिंगलीलाविद्याचारित्र तथा कई अनेक ग्रन्थों में यही विचार व्यक्त किया गया है। लिंगस्थल ही उपास्यदेव है और अंगस्थल ही उपासक भक्त है। ऐसा इसलिए होता है कि शिव ने लीला हेतु अपनी शक्ति का संकोच कर लिया है।

शिव की शक्ति का संकोच ही मलत्रय के लिए उत्तरदायी है। मैंने बसवेश्वर स्मारक ग्रंथ में प्रकाशित अपने लेख में इस संकोचन प्रक्रिया का संक्षेप में वर्णन यों किया है—'शिव की रचनाशक्ति का संकोच ही आणवमल का मूल कारण है। अतः अनंत सांत हो जाता है। शिव की ज्ञानशक्ति का संकोच ही मायामल का कारण है। इससे जीव की सर्वज्ञता अज्ञता में परिणत होती है। शिव की क्रियाशक्ति का संकोच ही कर्ममल का कारण है। इससे जीव की कर्म करने की क्षमता घट जाती है और वह अपने शुभाशुभ कर्मफल का भोक्ता बन जाता है।'

वीरशैव धर्म में जीव जिस देह में निवास करता है उससे वह सर्वथा भिन्न

रहता है। जीव क्रियाहीन देह को कार्य में प्रवृत्त करता है और कर्मफल भोगता है। उपनिषदों में यह साफ कहा गया है कि जीव देह से भिन्न हैं, मृत्यु के क्षण में जीव शरीर त्याग देता है[90] और फिर से कार्योन्मुख होने के लिए इस धरती पर लौट आता है।

वीरशैव धर्म और उपनिषदें दोनों इस पर सहमत है कि जीव न पुरुष है, न स्त्री, न नपुंसक ही। वह जो आकृति ग्रहण करे, वही ठहरता है।

जागृत अवस्था में जीव 'विश्व' माना जाता है, स्वप्न-अवस्था में तेजस् और सुषुप्ति में प्राज्ञ माना जाता है।

नारदयरिब्राजकोपनिषद् में भी ठीक इससे मिलता-जुलता विचार है। वीरशैव धर्म में त्रिविध शरीर में जीव की जो त्रिविध स्थितियाँ मानी गई हैं, उनसे वह कई बातों में मेल खाता है। पैंगलोपनिषद् और माण्डूक्योपनिषद् में भी ठीक इसी प्रकार के विचार मिलते हैं। वीरशैव धर्म में व्यक्ति स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर से युक्त माना गया है।

जीव स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर मे क्रम से विश्व, तेजस् और प्राज्ञ रूप में रहता है।

मायिदेव का कहना है कि जीव एक अवश्य है। पर वह स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर में विश्व, तेजस् और प्राज्ञ रूप में इष्ट, प्राण व भाव इन तीनों लिंगों की उपासना करता है। मायिदेव ने विश्व, तेजस् व प्राज्ञ को जीवात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा भी कहा है। पर चन्नबसवण्ण ने जो व्याख्या की है और वचनशास्त्र में जो विश्लेषण मिलता है दोनों में मायिदेव से मतभेद दिखाई पड़ता है।

वचनशास्त्र में आत्मा नौ प्रकार की बताई गई है—यथा जीवात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा, निर्लमात्मा, शुद्धात्मा, ज्ञानात्मा, महात्मा, दिव्यात्मा और चिन्मयात्मा। वचनशास्त्र में इन नवविध आत्माओं का जो वर्णन मिलता है। वह उत्तरोत्तर आत्मा की पवित्रता का प्रमाण है।

शैवसिद्धान्त के अनुसार जीव शाश्वत, अनन्त और सर्वव्यापी है पर उसका स्वरूप मल से आवृत है। शैवसिद्धान्त के अनुसार जीव शाश्वत अवश्य है, पर वह ईश्वर से पृथक् है। वीरशैव धर्म केवल ईश्वर की सत्ता को ही मानता है और उसके अनुसार जीवन वास्तव में ईशवर से पृथक् नहीं है। पर वह शैवसिद्धांत से इस बात पर सहमत है है कि जीव मलत्रय से घिरा हुआ है। कश्मीरी शैवमत के अनुसार परमशिव ही ससीम होकर जीव में परिणत होता है और आभास सिद्धान्त के अनुसार अनेक रूप धारण करता है। वीरशैव धर्म कश्मीरी शैवमत से सहमत है कि परमशिव या महालिंग का

अखंड चैतन्य ही लीला हेतु या अविद्या के कारण जीव में परिणत होता है। वीरशैव धर्म जीव को ईश्वर का ही अंश या भाग मानता है। विशिष्टाद्वैत में भी यही तत्व स्वीकृत है। वीरशैव धर्म द्वैत सिद्धान्त से इस बात पर सहमत है कि जीव और ब्रह्म में भेद है। पर वह केवल आरम्भ में है और तब तक वह भेद बना रहता है जब तक वह मलत्रय से घिरा हुआ है। वीरशैव धर्म अद्वैत सिद्धान्त से भी सहमत है कि जीव का चरम लक्ष्य अद्वैत है।

इस प्रकार वीरशैव धर्म समन्वयात्मक पद्धति के सहारे उस मूल सत्य का वर्णन करता है जो उपनिषदों के परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले वक्तव्यों में जीव के स्वरूप के नाना स्तरों के बहाने वर्णित है।

थोड़े में यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वीरशैव धर्म में जीव (अंग) ब्रह्म (लिंग) से आरम्भ में व्यावहारिक अर्थ से भिन्न है, पर वही अंततोगत्वा उससे इस कार मिल जाता है जिस प्रकार घी में घी, दूध में दूध और जल में जल।

अध्याय-३

छत्तीस तत्व और विश्व का विकास

ईश्वर की सत्ता प्रायः सभी दार्शनिक सम्प्रदायों को मान्य है। उनका कहना भी है कि ईश्वर ही विश्व के विकास के लिए उत्तरदायी है। सृष्टि-रचना प्रक्रिया तथा इतर विवरणों के बारे में ही उनमें मतभेद है। कुछ शैवागमों और वीरशैव दर्शन संबंधी प्रधान ग्रन्थों में विश्व के विकास का उल्लेख इस प्रकार मिलता है।

आदि में निष्कललिङ्ग[1] या शिव ही अद्वितीय था। वह पवित्र था।[2] अतः उसका नाम शिव था। वह सर्वोच्च से भी ऊँचा था।

शिव अकेला था[3] तो उसे सृष्टि-रचना[4] की बात सूझी[5]। उसका संकल्प[6] ही विश्व के विकास के लिए पर्याप्त था[7]। शैवगमों में लिखा गया है कि विश्व का विकास उसकी दिव्य-लीला[8] का ही परिणाम है। ब्रह्मसूत्रों[9] में भी यह वर्णित मिलता है कि सृष्टि-रचना प्रभु की लीला मात्र है। शैवगमों में विस्तार से रचना प्रक्रिया का वर्णन मिलता है। शिव त्रिविध रूप धारण करते हैं—जैसे निष्कल, निष्कल-सकल तथा सकल।

शिवतत्व निष्कल[10] माना गया है। शिव एक है, पवित्र है, शाश्वत है, उच्चाति-उच्च है। संक्षेप में कहना हो तो शिव की परम सत्य है।[11] वह उपनिषदों में वर्णित परब्रह्म के समकक्ष है। शिव ने सृष्टि-रचना की कल्पना की तो उसी के एक अंश से पराशक्ति आविर्भूत हुई। पराशक्ति, आदिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रिया शक्ति[12] क्रम से एक के बाद एक विकसित हुईं। अर्थात् पराशक्ति के एक अंश से आदिशक्ति निकली, आदिशक्ति के एक अंश से इच्छाशक्ति निकली। इस प्रकार शक्तियाँ एक व्यवस्थित क्रम से विकसित हुईं। वातुलागम में एक अंश पहली के सहस्रांश[13] के बराबर माना गया है। ये सारी शक्तियाँ निष्कल हैं। यही शिव सृष्टि है।

ऋषियों तथा इतरों के ध्यान तथा उपासना[14] की सुविधा हेतु निष्कलशिव ने निष्कल-सकल शिव-रूप धारण किया। यह निष्कल-सकल ही सदाशिव माना जाता है। सादाख्य[16] भी इसी का दूसरा नाम है। शिवतत्व का परा[17] आदि पाँच शक्तियों से संपर्क होते ही उनका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—

पहला है शिव-सादाख्या[18]। वह पराशक्ति[19] के 1/10 अंश से व्यक्त हुआ है।

शांत्यतीत कला[20] इसका लक्षण है। यह शिवसादाख्य इसलिए कहा गया है कि यह पवित्र तथा पराशक्ति[21] से व्यक्त हुआ है। यह प्रसन्न है, सूक्ष्म है, अनुपम विद्युत की प्रभा से मिलता-जुलता है और समस्त तत्वों का निवास है [22]

आदिशक्ति के 1/10अंश से अमूर्तसादाख्य व्यक्त हुआ है। शांत्याख्य कला[24] इसका है लक्षण। वह अमूर्तसादाख्या इसलिए है कि वह रूप है और ग्रहणसीमा से परे है। यह दीपशिखा के समान है और एक करोड़ सूर्यों के तेज से मिलता जुलता है। [24] यह वह दिव्यलिङ्ग है जिससे विकास आरभ होता है और जिसमें विलयन भी होता है।[25]

इच्छाशक्ति के 1/10 अंश से मूर्तसादाख्य व्यक्त हुआ। विद्याकला[26] इसका लक्षण है। इसका नाम मूर्त इसलिए है कि यह दिव्यलिङ्ग के आकार से मिलता-जुलता है और जलती आग से मेल खाता है। उसके ऊपरी हिस्से[27] में त्रिनेत्र वाला[28] ललाट है।

ज्ञानशक्ति के 1/10 अंश से कर्तृसादाख्य व्यक्त हुआ। प्रतिष्ठाकला इसका लक्षण है। कर्तृसादाख्य वह इसलिए है कि वह ज्ञान की प्रकृति का है। दिव्यलिङ्ग के ठीक बीच ईश्वर समासीन है। वह बड़ा विशाल है और निर्मल स्फटिक से मिलता जुलता है।[29] ईश्वर के चार मुख अलग-अलग रंगों के हैं—बारह नेत्र हैं—आठ भुजाएँ और दो पाद हैं। उसके दायें बायें हाथों में विविध प्रकार के आयुध और उपकरण हैं।[30]

क्रियाशक्ति के 1/10 अंश से कर्मसादाख्य व्यक्त हुआ। निवृत्तिकला इसका लक्षण है। यह नाद-बिंदु युक्त लिङ्ग है। यही लिङ्ग सभी मंत्रों का स्रोत है, विश्व का उपादान कारण और समस्त तत्वों का मूल है।[32]

शिव-सादाख्य, अमूर्तसादाख्य, मूर्तसादाख्य, कर्तृसादाख्य, कर्मसादाख्य आदि पांच सादाख्य शिव के निष्कल-सकल रूपी सदाशिव के पाँच मुखों का काम देते हैं। आगमों में[33] इन पाँच मुखों की दिशाओं का भी निर्देश है। कर्मसादाख्य, कर्तृसादाख्य, मूर्तसादाख्य, अमूर्तसादाख्य तथा शिवसादाख्य क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा ऊर्ध्व की ओर मुंह किये हैं।

सदाशिव की उपासना लिङ्ग, स्थण्डिल, वह्नि, मण्डल आदि की आकृतियों में या अपने हृदय[34] में ही होनी चाहिए। आवाहन, स्थापन, सन्निधान और संरोधन के लक्षणों की जानकारी रोचक होती है। वातुलशुद्धाख्य तंत्र[35] में इसका वर्णन मिलता है। अंतर्निहित चैतन्य की ज्योति जगाना और उद्दीप्त करना ही आवाहन है। ईश्वर के साक्षात्कार की जानकारी और अनुभूति ही सन्निधान है। ईश्वर पर मन को एकाग्र करना ही संरोधन है। कन्नड़ टीकाओं में मिला यह विवेचन 'आवाहन' शब्द की

व्याख्या से मेल नहीं खाता।

कर्मसादाख्य के सहस्रांश से महेशतत्व व्यक्त हुआ। महेश तत्व सकल रूप ग्रहण करके पच्चीस दिव्यलीलाओं[36] का कारण बना। महेश विश्व के सृजन, स्थापन और विलयन का कारण है। अष्टाङ्ग-योग की साधना में निरत योगियों का वही ध्यातव्य ठहरता है। इस जन्म-मरण के भावसागर को पार करने हेतु भक्तों का वही उपास्य है। मुमुक्षु उसी में मन रमाते हैं। संक्षेप में कहना हो तो कह सकते हैं कि महेश परमेश्वर है और वही उपासना का आलंबन है।[37]

महेश के कोट्यंश से ब्रह्म और विष्णु व्यक्त हुए हैं।[38] वातुलागम में इतर देवों और शक्तियों को महेश से ही उत्पन्न कहा गया है।

यहाँ तक, वीरशैव धर्म के आकर ग्रन्थ माने गये आगमों के अनुसार, तत्वों के विकास का निरूपण हुआ है। किंतु बाद को वचनशास्त्र में ये ही कल्पनाएँ और विस्तृत ढंग से प्रतिपादित मिलती हैं। यहाँ वचनशास्त्र के अनुसार विकास की रूपरेखा देने का प्रयास किया जा रहा है।

तोंटद सिद्धलिङ्ग शिवयोगीजी परमतत्व की आदि अवस्था को सर्वशून्य-निरालंबस्थल[39] मानते है। परमतत्व अद्वितीय था। वह नाम रूप से परे था। उसमें प्रवृत्ति तथा निवृत्तिमूलक गुण थे। परमतत्व की सत्ता की यह अवस्था उनके अनुसार सर्वशून्यनिरालंब थी। शिवयोग के उस महान् साधक ने परमतत्व में परवर्ती विकास संबंधी सोपानों को शून्य लिङ्ग, निष्कल लिङ्ग आदि माना है।[40]

कल्लुमठ के प्रभु देवजी ने अपने 'लिङ्गलीला विलास चरित्र' में परमतत्व के विकास-संबंधी त्रिविध सोपानों को निष्कललिङ्ग,[41] महालिङ्ग[42] और लिङ्गमूर्ति[43] स्थल नाम दिया है। वचनशास्त्र में इन त्रिविध लिङ्गों के स्वरूप का जो वर्णन मिलता है वह सामान्यत:[44] शिव के निष्कल, निष्कल-सकल और सकल रूपों से मेल खाता है। शैवागमों में परमतत्व के विकास का यही क्रम वर्णित है। परमतत्व के विकास को सर्वशून्य तथा शून्य रूप में सूचित करने की आवश्यकता न तो शैवागमों, न उपनिषदों के ही दृष्टिकोण से अनिवार्य प्रतीत होती है। वचनशास्त्र के अवलोकन से ही यह स्पष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ बोळ बसव, चन्नंजेदेवरु, एलमलेय गुरुशांतदेव और संपादनेय सिद्धवीरणार्य[45] के बाद गूलूर सिद्धवीरणार्य तोंटद सिद्धलिङ्ग शिवयोगीजी के शिष्य थे। सिद्धवीरणार्य ने अपनी पुस्तक का नाम 'शून्यसंपादने' दिया है। पर पुस्तक में ही निष्कल-लिङ्ग को परमतत्व का पहला सोपान लिखा है। 'आदि में, अविभक्त लिङ्ग (निष्कल लिङ्ग), अविभाज्य, अद्वितीय'''सर्वशून्य समाविष्ट''''।[46] यह कथन स्पष्ट बताता है कि गुणातीत निष्कललिङ्ग सर्वशून्य को भी अंतर्भुक्त कर लेता है। कल्लमठ के प्रभुदेव भी साफ कहते हैं कि निष्कललिङ्ग एकाकी था, अद्वितीय था, सर्व-

शून्य में व्याप्त था—आगे वे कहते हैं कि विशशून्यवस्तु ही वास्तव में निष्कल लिङ्ग मानी गई।[47] यों वचनों में भी विश्व के विकास की प्रक्रिया के वर्णन में परमतत्व 'निष्कल ब्रह्म', 'निष्कल लिङ्ग' ही कहा गया है। 'शून्य' पद का प्रयोग निष्कल लिङ्ग[48] का एक लक्षण सूचित करने के लिए हुआ है। अत: परमतत्व के क्रमिक विकास के सोपान शैवगामों में जो वर्गीकृत हैं, वे सुव्यवस्थित ठहरते हैं।

सादाख्यों का जो वर्णन हो चुका है उसमें वचनशास्त्र कुछ और बातें जोड़ते हैं। जो तालिका तैयार की गई है वह शैवागम, वचन तथा प्रमुख वीरशैव शरणों क उक्तियों पर आधारित है। अक्कमहादेवी प्रख्यात महिला संत हो गई हैं। उन्होंने तत्वों के क्रमिक विकास का पूरा वर्णन किया है। यहाँ उन्हीं की पद्धति का सहारा लिया गया है। दार्शनिकों में व्यक्त मतभेदों को सूचित करने के लिए स्पष्ट संख्याएँ दी गई हैं। टिप्पणी में संख्या के सामने शरण या शरणों का दृष्टिकोण विस्तार से अंकित है।

वीरशैव धर्म में परमतत्व ही तत्वों के विकास का मूल माना गया है। परब्रह्म एक था, अद्वितीय था। वह प्रवृत्ति, निवृत्ति आदि गुणों से परे था वह नाम, रूपी और तत्वों से परे था। ऋग्वेद के प्रसिद्ध नासदीय सूक्त[49], छांदोग्योपनिषद्[50], तैत्तिरयोपनिषद्[51] आदि में इससे मिलता-जुलता वर्णन देखा जा सकता है।

'आदि में असत् था, एकाकी था, अद्वितीय था—असत् से सत् का आविर्भाव हुआ। भाष्यकार 'असत्' की भी व्याख्या 'मानो कुछ न था' इस अर्थ में जो करते हैं वह मनोरंजक है। इस प्रकार यह वर्णन वीरशैव शरणों द्वारा किये गये परमतत्व संबंधी वर्णन से मिलता जुलता है। नासदीय सूक्त में आगे कहा गया है कि परब्रह्म कैसे था। उसमें कहा गया है कि वह 'स्वधा'[52] लक्षण-युक्त था। सायण ने स्वधा की व्याख्या प्रभु की माया के रूप में की है। यह माया प्रभु में ही निहित है। वीरशैव धर्म भी मानता है कि शक्ति परब्रह्म से उसी प्रकार अभिन्न है जिस प्रकार चन्द्रमा से ज्योत्स्ना। आगमों के अनुसार शिव से परा, आदि, इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि पाँच शक्तियाँ निकलीं और ये निष्कल भी मानी गई।[53]

शिव ने निष्कल-सकल रूप अपनाया और सदाशिव या सादाख्य कहलाया।[54] वचनशास्त्र मानते हैं कि महालिङ्ग से पाँच सादाख्य व्यक्त हुए।[55] सदा शिव के पाँच मुख होते हैं। और उन्हीं से पाँच बीजाक्षर प्रकट हुए हैं।[56] शैवसिद्धान्त भी मानता है कि शिव का शरीर पावन मंत्र से बना है।

शैवसिद्धान्त के अनुसार बिन्दु या माया निमित्त कारण है और विश्व का मूल स्रोत है।[58] वीरशैव धर्म की दृष्टि में लिङ्ग विश्व का मूल है।[59]

आत्मन्, आकाश, वायु, अग्नि, आप:, पृथ्वी आदि तत्व इसी क्रम में पूर्वापर

संबंध से विकसित हुए है।[60] तैत्तिरीय[61] तथा योगचूडामणि उपनिषदों[62] में तत्वों का जो विकास वर्णित है वह इससे सहमत है। उपनिषदों का ही आधार ग्रहण कर शंकर ने भी[63] कहा कि आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से आप:, अप् से पृथ्वी आदि का विकास हुआ है।

सिद्धलिंग शिवयोगी[64] आगे कहते हैं कि इन स्थूल तत्वों के अधिष्ठाता देवता सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु, और ब्रह्म हैं। यह चूडामण्युपनिषद्[65] के वर्णन से ठीक मिलता-जुलता है।

प्रभुदेव, चन्नबसवण्ण, तोंटद सिद्धलिंग शिवयोगी तथा कई अन्य शरणों का कहना है कि स्थूल पंचभूतों से ही अंतःकरण, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ आदि विकसित हैं। महाभारत के XII, ३१६-४ और १४ में सांख्य से संबद्ध एक योजना लक्षित होती है जो कुछ भेदों के रहते हुए भी चन्नबसवण्ण की योजना के अधिक निकट पड़ती है। उसके अनुसार पृथ्वी से बुद्धि, तेजस से अहंकार और आकाश से मन का विकास हुआ है। अतः ये सब पंचभूतों से ही व्यक्त हुए हैं। चन्नबसवण्ण की योजना का क्रम ही यहाँ भी लक्षित होता है। ज्ञानेन्द्रियों और उनके विषय एक ही पंचभूत से व्यक्त हैं।[66]

तमिलनाड का शैवसिद्धांत, काश्मीर का शैवागम दोनों ने छत्तीस तत्व माने हैं। इन छत्तीस तत्वों की व्याख्या दोनों में बहुत एक सी है।

विशेषतः पुरुषतत्व के बाद इतर तत्व सांख्यतत्वों के ही अनुरूप हैं। शैवसिद्धांत में गुणतत्व[67] पृथक् और स्वतंत्र रूप में स्वीकृत हैं। सांख्य पद्धति में उसे स्वतंत्र तत्व के रूप में माना नहीं गया है।[68]

वीरशैव धर्म छत्तीस तत्व मानता है। पर शैवसिद्धांत और काश्मीर शैवागम में वर्णित तत्वों से ये भिन्न हैं। शिवतत्व या शुद्धतत्व या चित्ततत्व; शुद्धाशुद्ध या चिद-चित्ततत्व, अशुद्ध[69] या अचितत्व आदि रूपों में शैवसिद्धांत इन तत्वों का वर्गीकरण करता है। वीर शैवधर्म इस त्रिविध वर्गीकरण को तो मानता है। पर उनका नामकरण शिवतत्व, विद्यातत्व और आत्मतत्व कर देता है। अङ्ग तत्व और लिङ्गतत्व नाम से भी उनका द्विविध वर्गीकरण हुआ है। यह इस प्रकार हैं:—

पहला है शिवतत्व (महालिङ्ग) जो निष्कललिङ्ग से व्यक्त हुआ है। पाँच कलाएँ या शक्तियाँ (पराशक्ति, आदिशक्ति, इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रिया-शक्ति) और पाँच सादाख्य (कर्मसादाख्य, कर्तृसादाख्य, मूर्तसादाख्य, अमूर्तसादाख्य और शिवसादाख्य)—ये दस विद्यातत्व हैं। स्थूल पंचभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच महाप्राण, चार अंतःकरण और आत्मा—ये पच्चीस आत्मतत्व हैं।[70]

ये ही आत्मतत्व अंगतत्व भी कहे गये हैं। पाँच शक्तियाँ या कलाएँ, पाँच

सादाख्य, शिवतत्व या महालिङ्ग ये ग्यारह लिङ्गतत्व माने गये हैं।

इस विश्लेषण से लगता है कि वीरशैव शरण साधनामार्ग के अधिक पक्षपाती रहे हैं। अतः तत्वों के विकास की प्रक्रिया के वर्णन में धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रबल दिखाई देता है।

पारमेश्वरागम वीरशैव दर्शन का आकर ग्रंथ माना जाता है। उसमें इन छत्तीस तत्वोंका निरूपण विशुद्ध आधिभौतिक दृष्टिकोण से हुआ है।[72] मोटे तौर पर यह वर्गीकरण शैवसिद्धांत और काश्मीर शैवागम के वर्गीकरण से मिलता-जुलता है। पारमेश्वरागमों में इन तत्वों का जो वर्णन हुआ है, उसका उल्लेख पहले ही हो चुका है। यहाँ उन्हें दुहराया नहीं जा रहा है। वीरशैव धर्म के अनुरूप जो दूसरा वर्गीकरण है, उसी की चर्चा इस अध्याय में की गई है।

अधिकांश वीरशैव विद्वानों ने चन्नबसवण्ण का वर्गीकरण अपना लिया है। चन्नबसवण्ण एक प्रकांड पंडित हैं और षट्स्थल सिद्धांत के विख्यात व्याख्या हैं। उनका कहना है कि उनका अपना वर्गीकरण पारमेश्वरागम के उपागम विजयभैरवी के तत्व-पटल पर आधारित है। वीरशैवधर्म शैवागमों से विशेष प्रभावित है। सच पूछा जाय तो कहना होगा कि शैवागमों का बड़ा मान है और वे प्रामाणिक आकर ग्रंथ माने जाते हैं। अधिक से अधिक संख्या में शैवागम उपलब्ध हों तो इन समस्याओं पर और भी विशेष प्रकाश पड़ सकता है।

संदर्भ

१. निरामयम् निराकारम् निर्गुणम् निर्मलम् शिवम्।
ज्योतिर्मयम् निएलंबम् सर्वाधारमनूपमम्॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद, पटल-६ श्लोक-८ पृ० ३६

२. शिवस्य लक्षणम् वक्ष्ये समासाच्छृणु षण्मुख।
... .

शुद्धत्वाच्छिवमुद्दिष्टम् पराद्धर्वम् परात्परम।
वातुल्य शुद्धाख्य तंत्र—हस्तलिखित प्रति— तत्वभेद पटल श्लो. १८-२०
गवर्मेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्ररी—मद्रास

३. यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्नसन्नचासच्छिव एव केवलः।

श्वेताश्वतरोपनिषद्—४-१८ पृ० १२४

४. शिवाभिदम् परंब्रह्म जगन्निर्मातुमिच्छया।

स्वरूपमाददे किंचित्सुखस्फूर्ति विजृंभितम् ।।
सिद्धान्तशिखामणि खंड-१-२-८ पृ० १३

५. मोसेस का स्पष्टीकरण है—आरंभ में ईश्वर ने स्वर्ग और पृथ्वी का निर्माण किया (जनरल—चा०-१ होलिबाइबिल —पृ० १)

६. सो कामयत बहुस्याम् प्रजाये इति
तैत्तिरीयोपनिषद्—२-६ पृ० २४

७. ब्रह्माण्ड बना कैसे, यह सुनाता हूँ, सुनिये ।
आदि अनादि से दूर निराकार परमवस्तु अपना स्वरूप खुद न जानने से अनंत कल्प कल्पांतरों तक रहकर अपनी लीला से स्वयं जगत् की सृष्टि का निमित्त बनी-स्मृति जगी तो वही स्मृति संकल्प बनी-चित्त कहलाई है वन में निर्मित शंकर प्रिय चन्नकद्रंब लिंग निर्माय प्रभु ।
वचनशास्त्र—खंड-२ वचन ३ पृ० १४-१५
शिव अनादि है⋯इस प्रकार तुम्हारी स्मृति मात्र से तीनों जगत् उत्पन्न होते हैं —हे महालिङ्ग गुरुशिवसिद्धेश्वर प्रभु ! तू ही इसका कारण है ।
तोंटद सिद्धलिंग शिवयोगिगळ वचनगळु—वचन ६६ पृ० ४५

८. एवम् रूपः परात्मा हि पशु पाशविमोचकः ।
शंभुः कदाचिन्निजया प्रकृत्या लीलया स्वयम् ।
सृष्ट्यर्थम् सर्वतत्वानाम् जगदुत्पत्तिकारणम् ।।
योगिनामुपकराय स्वेच्छया चिन्तयच्छिवः ।।
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लोक १६-१८ पृ० ३

९. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्
ब्रह्मसूत्र-२-१-३३

१०. शिवतत्वम् महासेन निष्कलम् चेति कीर्तितम् ।
वातुलशुद्धाख्य तंत्र—तत्वभेद पटल —तंत्रसंग्रह में उद्धृत श्लोक १५ पृ० २

११. सूक्ष्मागम, क्रियापाद पटल-१ श्लोक-१४-१५ पृ० २

१२. ध्यायमानात्ततो देवि पराशक्तिरजायत ।
आदिशक्तिस्ततो जाता पराशक्त्यंशभेदतः ।
आदिशक्त्यंशतः साक्षादिच्छाशक्ति रजायत ।
इच्छाशक्त्यंशभेदेन ज्ञानशक्ति रजायत ।
ज्ञानशक्त्यंशभेदेन क्रियाशक्ति रजायत ।
एकैव पंचधा भिन्न निर्मला शिवचिन्तया ।।
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लोक-२०-२२ पृ० ३

१३. तस्यचिन्ता पराशक्तिः सहस्रांशेन जायते ।
एषवै पंचधा शक्तिः निष्कलाश्वेति कीर्तिता ।
शिवसृष्टिरियम् प्रोक्ताः शक्तीनाम् सृष्टिरुच्यते ।
वातुल तंत्र हस्तलिखित प्रति—तत्वभेद पटल—लिप्यंतर पृ० ३
हस्तलिखित प्रति सं० डी ५४७७—गवर्मेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, मद्रास

१४. योगिनाम् च यतीनाम् च ज्ञानिनाम् मन्त्रिणाम् तथा ।
ध्यानपूजानिमित्ताय निष्कलम् संकलम भवेत् ॥
वातुल तंत्र हस्तलिखित प्रति—तत्वभेद पटल लिप्यंतर पृ० ३
हस्तलिखित प्रति सं० डी-५७७७ गवर्मेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, मद्रास

१५. सकलम् निष्कलम् चैव सदाशिवमिति स्मृतम् ।
वातुलतंत्र हस्तलिखित प्रति तत्वभेद पटल लिप्यंतर पृ० २
हस्तलिखित प्रति सं० डी-५४७७ मक्के ' वर्मेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, मद्रास

१६. तद्रूपम् हि समासेन सादाख्यमिति कीर्तितम् ।
वातुलतंत्र हस्तलिखित प्रति तत्वभेद पटल लिप्यंतर पृ० ३
हस्तलिखित प्रति सं० डी-५४७७ गवर्मेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, मद्रास

१७. पराशत्तयादिशतयोश्च बिन्दुनादस्वरूपयोः ।
मेलने शिवतत्वस्य सादाख्यम् समजायत् ॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लोक २४ पृ० ३

१८. प्रथमम् शिवसादाख्यम्
वातुलतंत्र हस्तलिखित प्रति तत्वभेद पटल लिप्यंतर पृ० २
हस्तलिखित प्रति सं० डी-५४७७ गवर्मेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, मद्रास

१९. शांत्यातीतापराशक्तिस्तस्याः पर्यायवाचिकः ।
पराशक्तेर्दशांशेन शिवसादाख्यमुद्भवम् ॥
वातुलतंत्र हस्तलिखित प्रति तत्वभेद पटल लिप्यंतर पृ० ४
हस्तलिखित प्रति सं० डी-५४७७ गवर्मेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्रेरी, मद्रास

२०. वातुल तंत्र में कलाएँ शक्ति की पर्यायवाची मानी गई हैं । किंतु सूक्ष्मागम में वे शक्ति से भिन्न मानी गई हैं । वचनशास्त्र में भी कलाएँ शक्ति से भिन्न मानी गई हैं ।

शांत्यतीता पराशक्तिस्तस्याः पर्यायवाचक
वातुलतंत्र हस्तलिखित प्रति डी-५४७७ तत्वभेद पटल लिप्यंतर पृ० ४
शांत्यतीत कलायुक्तम् पराशक्ति समुद्भवम्
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लोक-३३ पृ० ४
....

वह महालिङ्गम ही पंचसादाख्य मूर्ति कहलाया······
उन पाँच सुखों से ही पांच अक्षर उत्पन्न हुए। उन पंचाक्षरों से ही पाँच कलाएँ निकलीं। उन पाँच कलाओं से ही पाँच शक्तियाँ आविर्भूत हुईं—वचनशास्त्र खंड-२ पृ० ५५

२१. पराशक्तयुद्भवत्वाच्च शुद्धत्वाच्छिवनीरितम्।
वातुलशुद्धाख्यतंत्र तत्वभेद पटल—श्लोक ४३ पृ० ४ तंत्रसार संग्रह में उद्धृत

२२. प्रसन्नम् सूक्ष्मरूप च विद्युतभमनूपमम्।
शुद्धम् च शिवसादाख्यम् सर्वतत्वालयम् परम्॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लोक ४६ पृ० ४ तंत्रसारसंग्रह में उद्धृत

२३. शान्तिरेवादिशक्तिश्च तस्याः पर्यायवाचकः।
आदिशक्ति दशांशेन ह्ममूर्तस्य समुद्भवः।
वातुलशुद्धाख्य तंत्र तत्व भेद पटल श्लोक-४६ पृ० ४ तंत्रसार संग्रह में उद्धृत

२४. शांताख्यकलया युक्तमादिशक्ति समुद्भवम्।
अमूर्तम् केवलम् लिङ्गम भानुकोटिप्रकाशकम्॥
तेजस्तम्प्रायभानम् स्यादमूर्तत्वादगोचरम।
ज्योतिर्लिङ्गम् परम साक्षाद्धययम शुद्धेन चेतसा॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लोक—३८३९ पृ० ५४ तंत्रसार संग्रह में उद्धृत

२५. एतद्वैदिव्यलिङ्गन्तु मूलस्तंभमिहोच्यते।
लिंगात्सर्वम् समुत्पन्नम् लयम तस्मिन्प्रकीर्तितम्॥
वातुलशुद्धाख्य तंत्र तत्वभेद पटल श्लो० ४९ तंत्रसार संग्रह में उद्धृत

२६. विद्या कलासमायुक्तमिच्छाशक्तिसमुभ्दवम्।
मूर्तम् मूर्तिधरम् दिव्यम् ज्वलदग्नि समप्रभम्।
लिंगरूपम् चैकवक्त्शम् नेत्रतयविराजितम्।
सर्वावयवसंपूर्णमेवम् ध्येयम् शुभावहेम्॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लो० ३७ पृ० ४

२७. ज्वालाग्निसदृशप्रख्या दिव्यलिंगाकृतिर्भवेत् ।

तस्योद्ध्वांशैकभागे तु चैकवक्त्र समन्वितम ॥
त्रिनेत्रम् चारुवदनम् सर्वावय वशंयुतम् ।
वातुलशुद्धाख्यतंत्र तत्वभेद पटल श्लो० पृ० ५ तंत्रसार संग्रह में उद्धृत

२८. कृष्णा परशुहस्तम् च वराभयचतुर्भुजम् ।
मूर्तसादाख्य के लक्षण के रूप में यह वातुलशुद्धाख्य में छपा मिलता है ।
(संपादित शंकरप्प अच्चप्प टोपिगि—हुबली—तंत्रसार संग्रह में सूचित)
किंतु मेरे पास रहने वाली दो हस्तलिखित प्रतियों में ऊपर का श्लोकार्ध नहीं है ।

२९. प्रतिष्ठाकलया युक्तम् ज्ञानशक्तिसमुद्भवम् ।
दिव्यलिंगम महादीर्धम् स्फटिकाभम सदोज्वलम् ।
जन्मध्ये संस्थिता मूर्तिरीश्वरः सर्वकारणम् ।
चतुश्शीर्षम् चतुर्वक्त्रम् चतुर्वर्ण सुशोभितम् ।
....

एवं तदेश्वरं रूपम लिङ्गं कर्लेभिपावकम ।
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लो०-३८-४३ पृ० ४-५

३०. ज्ञानम् चैव प्रतिष्ठाच तस्याः पर्यायवाचकः
....

एवम् तमीश्वरम् विद्यात्कर्तृसादाख्यलिङ्गकम् ।
वातुलशुद्धाख्यतंत्र तत्वभेद पटल श्लो०-५६-६२ पृ० ५

३१. निवृत्तिकलया युक्तम् क्रियाशक्तिसमुद्भवम् ।
नादबिन्दुसमायुक्तम् लिङ्गम् सृष्टयादिकारणम् ॥
सर्वमंत्रैकनिलयम् पूज्यम् देवासुरादिभिः ।
क्रियाविशेषतत्वाख्यम् कर्मरूपमुदीरितम् ॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लो० ४३-४४ पृ० ५

३२. वातुलशुद्धाख्य तंत्र तत्वभेद पटल श्लोक ६३-७१ पृ० ५-६
तंत्र सारसंग्रह में उद्धृत

३३. कर्मेशम् पूर्ववक्त्रंस्यात् कर्तृस्याद्दक्षिणाननम् ।
अपरम् भूर्तवकाम् तु अभूर्तम् चोत्तराननम् ॥
ऊर्ध्वम् तु शिवसादाख्यमेवम् पञ्चाननम् विदुः ॥
वातुलशुद्धसादाख्य तंत्र—हस्तलिखितप्रति तत्वभेदपटल श्लोक ९० लिप्यंतर प० १२१ हस्तलिखित प्रति मुरधामठ धारवार के परमपूज्य श्रीमहान्त स्वामीजी द्वारा संग्रहीत

३५. आवाहनम् स्वात्मनि चित्प्रकाशम् तत्र स्थितिस्थापनमीश्वरस्य ।
सानिध्यमात्रैश्वरसन्निधानम् संरोधनम् स्वस्यशिवे निरोधः ।
वातुलशुद्धाख्य तंत्र हस्तलिखित प्रति तत्वभेद पटल श्लो० ९९ पृ० १३०

३६. सादाख्यलक्षणम् प्रोक्तम् महेशं श्रुणु षण्मुख ।
कर्मेशस्य सहस्रांशात्महेशस्य समुद्भव ।।
महेशम् सकलम् विद्यात् सृष्टि स्थिति लयावहः ।
पंचविंशति भेदंस्तु तन्मूर्तिर्विविद्या भवेत् ।
नानारूपधरो देवः नानारूपसमन्वितः ।।
नाना चिह्नसमोपेतम् नानालीलाधरो हरः ।।
वातुलशुद्धाख्यतंत्र हस्तलिखित प्रति तत्वभेदपटल लिप्यंतर
पृ० १३४-१३८ धारवाड मुरघामठ के परमपूज्य महान्तस्वामीजी द्वारा संग्रहीत

३७. पंचविंशतिलीलाभिदेवदेवो महेश्वरः ।
सृष्टिस्थितिलयाद्यैश्च विहारैः क्रीडते निशम् ।।
अयमेव सदाध्येयो यमाद्यष्ठाङ्गसाधकैः ।
पूज्यः सदा भक्तिनिष्ठैर्भवांबुद्धितितीर्षुभिः ।।
मतव्यो मनना सक्तैर्मुमुक्षुभिरहर्निशम् ।
किमत्र बहुनोक्तेन स एव परमेश्वरः ।।
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लो०.५८-६० पृ० ६-७

३८. तन्महेश्वरकोटं्यशाब्रह्मा विष्णू समुद्भवौ
....

शक्तिभेदो विशेषेश समासात्परिकीर्तित
वातुलशुद्धाख्य तंत्र तत्वभेद पटल श्लो० १३३-१४० पृ० १०-११

३९. आदि, मध्य, अवसान जब न थे
आदि, अनादि, बिन्दु, कला आदि जब न थे—
....

तत्वब्रह्माण्डादि लोकादि लोक आदि जब न थे—
नित्य निरजन परवस्तु तू अकेला ही था
हे महालिंग गुरु शिवसिद्धेश्वर प्रभु ।
षट्स्थल ज्ञान सारामृत वचन १० पृ० ६

४०. वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ० ४-६

४१. लिंगलीलाविलास चरित पृ० ६

४२. लिंगलीलाविलास, पृ० १२

४३. वही पृ० २३

४४. एतेषामेव पूर्वम्तु तत्वभेदम् वदाम्यहम् ।
तत्वम् तु त्रिविधम् ज्ञेयम् तस्य भेदम् क्षुणुष्व हि ।
शिवम् सदाशिवम् चैव महेशम् त्रिविधम् स्मृतम् ।
शिवतत्वम् महासेन निष्कलम् चेति कीर्तितम् ।।
सकलम् निष्कलम् चैव सदाशिवमिति स्मृतम् ।
महेशम् सकलम् विद्यत्रिविधम् तद्भवेद्यथा ।।
वातुलशुद्धाख्यतंत्र तत्वभेद पटल श्लोक --१४-१६ पृ० २

४५. शीलवंतय्यन त्रिविध व्याख्यान षट्स्थल प्रभा में उद्धृत पृ० ३३३

४६. शून्यसंपादने खंड-१ पृ० ५२

४७. अखण्डाद्वयनित्य निरवयपरिपूर्ण सच्चिदानन्द है निष्कलवस्तु—वह एक है—सब कुछ शून्य हुआ····अपनी जानकारी का आभास न होने दिया। निज स्वभाव में रहे निःशून्य वस्तु को निष्कललिङ्गस्थल कहा गया है। लिंगलीलाविलास चरित—पृ० ६

४८. सकल तत्वों से परे गोचर परवस्तु···शाश्वत निराला नखशिख उदर आकृति से अगोचर—तनुमनकरणरहित लिङ्ग ही निष्कल ब्रह्म—यहाँ निष्कल लिङ्ग-स्थल समाप्त

वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ० ५२

४९. ऋग्वेद—१०-१२९

५०. छांदोग्योपनिषद्—६-२-१

५१. तैत्तिरियोपनिषद्—२-७

५२. नासदासीन्नो सदासीत् तदानीम् नासीद्राजो तो व्योमा परो यत् ।
....

अनीदवातम् स्वक्ष्या तदेकम् तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास ।
ऋग्वेद—१०.१२९, १-२
स्वधया इति स्वस्मिन् धीयते द्रियत आश्रित्व वर्तत इति स्वधा माया।
तया तद्ब्रह्मैकमविभागापन्नमासीत् ।
(सायण का भाष्य)

५३. तच्छिवेतु पराशक्तिः सहस्रांशेन जायते ।
एतावे शक्तयः पंच निष्कलाश्चेति कीर्तिताः ॥
वातुलागम—हस्तलिखित प्रति तत्वभेद पटल श्लोक २४-२७ मुरधामठ, धारवाड

५४. सूक्ष्मागम—तंत्रसारसंग्रह में उद्धृत क्रियापाद पटल-१ श्लोक २६ पृ० ५३

५५. अनादि परशिवतत्व से चित्त का आविर्भाव हुआ······
उस महालिङ्ग से पंचतादाख्यमूर्ति उत्पन्न हुई—
वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ० १३

५६. वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ० १८-१९

५७. शैवसिद्धान्त पृ० १०१

५८. प्रादुर्भूतम् जगत्कृत्स्नम् मायातस्सचराचरम् ।

५९. लिकारोलयबुद्धिस्थो बिन्दुना स्थितिरुच्यते
गकारात्सृष्टिरित्युक्ता लिङ्गम् सृष्ट्यादिकारणम् ।
सूक्ष्मागम क्रियापाद—६-५ पृ० ३८

६०. आत्मना आकाशस्संभूतिराकाशाद्वायुसंभवम् ।
वायोरग्निसमुत्पत्तिरग्नेराप उदाहृतः ।
अद्भयस्तु पृथ्वीसंभूतिर्लक्षणैक्य प्रभावतः ।
शिवानुभवसूत्रम् अध्याय-४ श्लोक ३४-३५ पृ० ५५-५६

६१. तैत्तिरीयोपनिषद् २-१ पृ० २३

६२. योगचूडामण्युपनिषद् ७२ पृ० २१४

६३. इंडियन फ़िलासफ़ि खंड-२ पृ० ५९२

६४. षट्स्थल ज्ञानसारामृत ५-६३ पृ० ४१-४४

६५. एतेषाम पंचभूतानाम् पतयः पंच सदाशिवेश्वररुद्रविष्णु
ब्रह्माणश्चेति
योगचूडामण्युपनिषद् ७२ पृ० २९४

६६. ए हैंडबुक आफ वीरशैविज्म पृ० १५३-१५४

६७. पौष्करागम हस्तलिखित प्रति पुस्त्व पठल श्लोक २०-२१
ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, मैसूर

६८. सांख्यकारिका श्लोक ११ पृ० २३

६९. चिंत्यागम (हस्तलिखित प्रति) आधारनिर्णय विधि पटल २७, ७५-७६
पृ० ४१४ इंस्तिलूत फ्रांसेइस द इंदालजी पांडिचेरी ।

७०. पच्चीस आत्मतत्व, श्रोत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रियां शब्दादि पांच विषय, मन आदि पांच करण, पच्चीस आत्मतत्व, कर्म सादाख्य, कर्तृ सादाख्य, मूर्तिसादाख्य, अमूर्तिसादाख्य, शिवसादाख्य, निवृत्तिकला, प्रतिष्ठाकला, विद्याकला, शांतिकला और शांत्यतीत कला इस प्रकार इस विद्यातत्व एवं शिवतत्व इस प्रकार छत्तीस
वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ० ४४

७१. ग्यारह तत्वों की परिक्रमा क्या है ? शांत्यादि पांच शक्तियां, शिवादि पांच कर्तृ, परशिवतत्व······इस प्रकार पच्चीस अंगतत्व, ग्यारह लिंग तत्व अंगतत्व लिंग तत्व के उभयतत्व छत्तीस
वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ० ४७

७२. अथ वक्ष्यामि गिरिजे शैवतत्वानिवैश्रृणु
पंचभूतानि तन्मात्राः पंच कर्मेन्द्रियाणि च ॥
ज्ञानकर्मविभागेन पंच पंच विभागशः ।
त्वगादिधातवः सप्त पंचप्राणादिवायवः ।
मनश्चाहंकृतिः ख्यातिर्गुणाः प्रकृतिपूरुषाः ।
रागो विद्या कला चैव नियतिः कला एवच
माया च शुद्धविद्या च महेश्वर सदाशिवौ
शक्तिश्च शिवतत्वानि प्रोक्तानि क्रमशः शिवे ॥
परमेश्वरागम भाग-२ पटल १७ श्लोक २९-३३ पृ० ६१

अध्याय 4

अविकृत परिणामवाद सिद्धांत

शिव एक है, अद्वितीय है ।[1] शिव में शक्ति उसी प्रकार रहती है जिस प्रकार चन्द्रमा में ज्योत्स्ना ।[2] इस प्रकार शिव और शक्ति में अविनाभाव सम्बन्ध मान लिया गया है ।[3] शिव में अवस्थित (ब्रह्मनिष्ठा) शक्ति के ज्ञान, क्रिया आदि कई लक्षण हैं। सिद्धांत शिखामणि के प्रसिद्ध भाष्यकार मरितोंटदार्य ने ब्रह्म से विश्व के आविर्भाव का स्पष्ट विवेचन इस प्रकार किया है—

शक्ति सनातनी[4] कही गई है और वह शिव में निहित है (ब्रह्मनिष्ठा है)। शिव और शक्ति का सम्बन्ध तादात्म्य का है। मरितोंटदार्य का कहना है कि शिव में विमर्श शक्ति होती है। यह विमर्श शक्ति चिदानन्देच्छा ज्ञानक्रिया नाम रूपिणी बताई गयी है। इनमें चित् और आनन्द में विक्षोभ नहीं होता क्योंकि वे अखंड हैं। किन्तु इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियों में विक्षोभ होता है।

शिव की शक्ति बहुमुखी है। चिदानन्द के रूप में वह प्रभु में "अविभाग परामर्श" रहता है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया इन रूपों के नाते वह उसमें 'विभाग परामर्श' रहता है। अतः इच्छा, ज्ञान और क्रिया विभाग परामर्श के अंश हैं।

विभाग परामर्श की अवस्था में चराचर पदार्थ समुद्र में तरंग[5] या बीज में वृक्ष[6] की भाँति गुप्त रहते हैं। मयूराण्डरसन्याय के दृष्टांत के सहारे भी इसका विवेचन हुआ है। मयूर के अंडे में पैर, पंख आदि की सत्ता तो है, पर वह गुप्त है, व्यक्त नहीं है। इसी प्रकार प्रभु में मूल रूप में गुप्त विश्व अगोचर रहता है ।[7] विश्व के सृजन का संकल्प शिव ने किया तो इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियाँ गुणत्रयात्मिका हो गईं। मरितोंटदार्य ने इस प्रक्रिया का विवेचन यों किया है :—

ज्ञान, क्रिया दोनों अलग शक्तियां मानी जरूर गई हैं पर वे अभिन्न हैं ।[8] विमर्श शक्ति के ज्ञानांश से सत्वगुण का स्फुरण होता है। यह पूर्णतः क्रियाशक्ति से अलग नहीं है। विमर्श शक्ति के क्रियांश से सत्व और तमोगुणों से मिश्रित रजोगुण का स्फुरण होता है। यह ज्ञानशक्ति से पूरी तरह अलग नहीं है। ज्ञान और क्रिया अभिन्न अवश्य होते हुए भी हम कहते हैं कि ज्ञान क्रिया नहीं और क्रिया ज्ञान नहीं। इन दोनों

शक्तियों के अलगाव का बोध ही तमोगुण[9] के विकास का मूल है। इस प्रकार शिव की शक्तियां अपने आप गुणों में परिवर्तित हो जाती हैं।[10]

श्वेताश्वतरोपनिषद्[11] तथा नारदपरिव्राजकोपनिषद्[12] में स्पष्ट कहा गया है कि ध्यान साधना में प्रवृत्त योगी स्वगुण में छिपी देवात्मशक्ति का साक्षात्कार कर सकते हैं। यह निर्विवाद रूप से लिखा गया है कि देवात्मशक्ति स्वगुणों से परिपूर्ण है। यह त्रिगुणात्मक शिव के विभाग परामर्श के वर्णन से मेल खाता है।[13]

सिद्धांत शिखामणि के अनुसार ये तीनों गुण जीवात्मा (भोक्तृ) संचालक तत्व या प्रेरक (शंभु या ईश्वर) और विश्व (भोज्य)[14] के लिए उत्तरदायी हैं। उसमें आगे कहा गया है कि शिव का चैतन्य रजोगुण में प्रवेश कैसे कर सका और किंचित् सत्व और रज से मिश्रित होकर जीवात्मा (भोक्तृ)[15] बना कैसे और वही चैतन्य अधिक सत्व में प्रवेश करके संचालक या आंतरिक नियन्त्रक (शंभु या ईश्वर)[16] हुआ कैसे शिव का वही चैतन्व अत्यंततामसोपाधि से युक्त होने से विश्व बन गया।[17]

इसलिए सिद्धांत शिखामणि में यह ठीक लिखा गया है कि भोक्ता, भोज्य और प्रेरयिता तीनों परब्रह्म के ही तीन अंश हैं।[18] पारमेश्वरनाम में शिव स्वयं अपने को ही भोक्ता, प्रेरयिता और भोज्य घोषित करते हैं।[19] ब्रह्म के इन तीन अंशों के बारे में सिद्धांत शिखामणि का दृष्टिकोण श्वेताश्वतर उपनिषद्[20] से हूबहू मेल खाता है। तैत्तिरीयोपनिषद्[21] में भी लिखा गया है कि विश्व का निर्माण करने के बाद स्वयं ईश्वर उसमें व्याप्त हो गये। भगवद्गीता[22] में भी कहा गया है कि 'यच्चापि सर्वभूतानि बीजम् तदहम्' मैं ही समस्त भूतों का बीज हूं। उसके बिना चराचर की सत्ता संभव नहीं। अतः ब्रह्म ही विश्व का मूल माना जाता है।

कारण सिद्धांत

यह सिद्धांत कारण-कार्य सम्बन्ध पर आधारित है। मूल कारण में ही कार्य रहता है या नहीं। न्याय वैशेषिकों का मत है कि कार्य मूल कारण में नहीं रहता। उनका दावा है कि उत्पादन से पहले कार्य की स्थिति संभव नहीं। अतः वे जिस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं वह असत्कार्य या आरम्भवाद कहा गया है। उनका आग्रह है कि उत्पादन के लिए आवश्यक कारणों के संघात से कार्य एक नई वस्तु के रूप में व्यक्त होता है।

कुछ अन्य दार्शनिक संप्रदायों के अनुसार असल में व्यक्त होने से पहले ही मूल कारण में कार्य की स्थिति होती है। ऐसा न होता तो धागे के अतिरिक्त और किसी साधन से कपड़ा तैयार हो सकता है? सच्चाई तो यही है कि वह एक ही वस्तु की अव्यक्त और व्यक्त अवस्था कही जा सकती है। उत्पादन से पहले ही कार्य की स्थिति

वाली बात सत्कार्यवाद नाम से जानी जाती है।

सत्कार्यवाद का त्रिविध वर्गीकरण संभव है। जैसे (१) विवर्तवाद (२) परिणामवाद और (३) अविकृतपरिणामवाद—

(१) कारण का कार्य में परिवर्तन विवर्त मात्र है, वास्तविक नहीं तो वह 'विवर्तवाद' कहा जाता है। एक उदाहरण लीजिए। हम सांप से मिलती-जुलती रस्सी देखते हैं तो उस बारे में मन में हुई प्रतिक्रिया विवर्त है। यहां वह आभास मात्र है, वस्तुस्थिति नहीं। यही विवर्तवाद है। सृष्टि केवल प्रातिभासिक है, सत्य नहीं। शंकर के अनुयायी वेदांतियों ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

(२) परिणामवाद दूसरा सिद्धांत है। उदाहरण लीजिए दूध का। दूध दही में परिणत होता है। यहां परिवर्तन के बाद दूध बचता नहीं। अतः कारण कार्य में परिवर्तित हो गया है। यह परिणामवाद कहा गया है।

(३) वीरशैव दार्शनिकों ने अविकृत परिणामवाद का समर्थन किया है। उनका कहना है कि ब्रह्म में अव्यक्त दशा में चराचर जगत् अवस्थित है। वे इस तथ्य पर मयूराण्डरसन्याय के सहारे जोर देते हैं। अंडे में मोर के अवयव अव्यक्तावस्था में छिपे पड़े रहते हैं, भले ही वे दिखाई न दें। इसी प्रकार शिव की अविभागपरामर्श शक्ति[23] में अव्यक्त दशा में ही ब्रह्म में यह ब्रह्मांड रहता है। पर ब्रह्म की लीला[24] या इच्छा[25] या संकल्प[26] के कारण इन तीन शक्तियों का गुणों में परिवर्तन हो जाता है और अत्यन्त तामसोपाधि[28] में शिव के चैतन्य के प्रवेश से सृष्टि का सृजन हो जाता है। काश्मीर शैवागम भी मानता है कि ब्रह्म की शक्तियों के प्रसार से ही सृष्टि का उदय हुआ है।[29] सिद्धांत शिखामणि[30] में भी यही माना गया है कि ब्रह्म की शक्तियों से चराचर जगत् का आविर्भाव हुआ है। शिव ही आत्मशक्ति[31] के सहारे विश्वात्मा के रूप में व्याप्त हो जाते हैं। अतः दार्शनिक मानते हैं कि सृष्टि शिव से भिन्न नहीं है।[32] वे कई दृष्टांतों से इसे समझाने की कोशिश करते हैं। सोने से कई किस्म के गहने बनते हैं। अलग-अलग रूपाकृति के कारण गहनों के नाम भी अलग-अलग होते हैं। पर वे सोने से अलग होते हैं? समुद्र की तरंगें तरंग ही हैं, समुद्र नहीं। पर सूक्ष्म दृष्टि से देखने वाला कोई तरंगों को समुद्र से अलग मान सकता है?[33] सोने से गहने बनते है, पर वे मूल सोने से अलग थोड़े हैं?[34] असल में न तो तरंग या न गहने ही क्रम से न समुद्र से, न सोने से ही अलग हैं। भले ही उनमें नाम रूप की भिन्नता लक्षित हो। इसी प्रकार शिव की शक्ति[35] से (निर्मित) व्यक्त विश्व शिव से पृथक्[36] नहीं है। वीरशैवधर्म के अनुसार यह विश्व ब्रह्म[37] से व्याप्त है। यथार्थ तो यही है कि विश्व ब्रह्म से पृथक् नहीं है। इतने पर भी विश्व की गतिविधियों से शिव अलिप्त हैं, अप्रभावित हैं। डा० एस०एन० दासगुप्ता का कहना है कि 'वास्तव में जो सत्य है वह यही है—जिस प्रकार दूध दही में परि-

णत होता है उसी प्रकार ब्रह्म अपनी ही इच्छा, ज्ञान और सर्वव्यापकता के सहारे अपने को ब्रह्मांड में परिणत कर लेता है। ब्रह्म के ब्रह्मांड में परिणत हो जाने में कोई अंतर्विरोध नहीं है[38] भले ही वह अखंड रहे। वह अपनी बहुविध शक्तियों में अपने संकल्प के अनुसार आवश्यक परिवर्तन द्वारा यह कार्य कर सकता है। निज के इस परिवर्तन के बावजूद वह अपनी पवित्रता में परिवर्तनातीत रहता है।'[39]

वीरशैव धर्म इसे ब्रह्म की इच्छाशक्ति[40] का परिणाम मानता है। तंत्रालोक[41] भी इससे सहमत है। योगी परिवर्तित हुए बिना जिस प्रकार कई वस्तुओं का निर्माण करता है उसी प्रकार स्वयं परिवर्तित हुए बिना शिव अपनी परामर्श शक्ति के बल पर अपने संकल्प मात्र से सृष्टि का निर्माण करता है। संहार या विलयन भी शिव के संकल्प के अनुसार ही होता है।[42] यह सारा ब्रह्मांड मूलतः शिव की शक्ति में ही निहित रहता है। अतः वीरशैव दार्शनिकों के अनुसार सृष्टि का विकास सूचित करने वाला सिद्धांत 'अविकृतपरिणामवाद' कहा जाता है। और निर्मित यह संसार भी सत्य है। वीरशैव दार्शनिक शिव के संकल्प के अनुसार विश्व में होते इस आवर्तन-विवर्तन को मुण्डकोपनिषद्[43] में उल्लिखित मकड़ी के दृष्टांत द्वारा समझाते हैं। 'जिस प्रकार अपनी इच्छा से मकड़ी जाल बुनती है और लपेट लेती है उसी प्रकार शिव की इच्छा से विश्व का यह आवर्तन विवर्तन होता आया है।' संसार शिव की शक्ति में सूक्ष्म रूप में[44] विलीन हो जाता है। अतः वीरशैव दार्शनिक सृष्टि की सत्यता का समर्थन करते हैं, उसे स्वीकार करते हैं।

11884

मूल	सादाख्य का नाम	लिंग का नाम	मुख	महामंत्र के अक्षर	कला	शक्ति	आविर्भूत विषय	आविर्भूत विषय (अलग-अलग रहस्य दर्शियों के अनुसार)	आविर्भूत वस्तु
निष्कललिङ्ग[1]	महासादाख्य	महालिंग	गोप्य[2]	—	शांत्यतीतोत्तर[3]	चिच्छक्ति[18]	आत्मन्[11]		
महालिङ्ग	शिवसादाख्य	प्रसादलिंग	ईशान	य[4]	शांत्यतीत	पराशक्ति	आकाश[13]	शब्द, मन, बुद्धि,	
							ज्ञान [5, 6]	चित्त, अहंकार, जीव[9]	आकाश[8]
							सदाशिव[10]	चित्त, बुद्धि, अहंकार, मन, ज्ञान[12]	
महालिङ्ग	अमूर्तिसादाख्य	जंगमलिङ्ग	तत्पुरुष	व[4]	शांतिकला	आदिशक्ति	वायु[13]	स्पर्श[7]	
							मन [5, 6]	पंच महाप्राण[9]	वायु[8]
							ईश्वर[10]	पंचमहाप्राण[12]	
महालिङ्ग	मूर्तिसादाख्य	शिवलिङ्ग	अघोर	शि[4]	विद्याकला	इच्छाशक्ति	अग्नि[16]		
							अहंकार[5, 6]	रूप[7]	अग्नि[8]
								ज्ञान के साधन[9]	
							रुद्र[10]	ज्ञान के साधन[9]	
महालिङ्ग	कर्तृसादाख्य	गुरुलिङ्ग	वामदेव	म[4]	प्रतिष्ठाकला	ज्ञानशक्ति	आप:[13]	रस[7]	
							बुद्धि [5, 6]	इंद्रिय-विषय[9]	आप:[8]
							विष्णु[10]	इंद्रिय-विषय[12]	
महालिङ्ग	कर्मसादाख्य	आचारलिङ्ग	सद्योजात्	न[4]	निवृत्तिकला	क्रियाशक्ति	पृथ्वी[13]	गंध[7]	पृथ्वी[8]
							चित्त [5, 6]	क्रिया के साधन[9]	
							ब्रह्म	क्रिया के साधन[12]	

(सूची में अंकित संख्याओं की व्याख्या)

१. शैवागमों के अनुसार सादाख्यों की संख्या पांच है। वे शिव के निष्कल-सकल रूप से आविर्भूत हैं। कुछ वचनों तक में केवल पाँच सादाख्यों का उल्लेख हैं (देखो—वचनशास्त्र खंड-२ पृ० १८)। किंतु तोंटद सिद्धलिंग शिवयोगीजी और बाकी लोग छः सादाख्यों को स्वीकार करते हैं (देखो—तोंटदसिद्धलिंग शिव-योगिगळ वचनगळु षट्स्थल ज्ञान सारामृत वचन-६३ पृ० ४१-४४)

२. 'जगतुसत्रिय सामान्य वचनगळु' में गोप्य मुख का उल्लेख हुआ है—वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ० ४६-६१

अक्कमहादेवीजी तथा अन्य रहस्यदर्शी कला से ही शक्ति का आविर्भाव मानते हैं। (उन पाँच कलाओं से ही पाँच शक्तियाँ निकली हैं। सो कैसे ? निवृत्तिकला से क्रियाशक्ति-वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ० ५४)

४. अक्कमहादेवीजी के अनुसार महामंत्र के पाँच अक्षर ईश्वर के पाँच मुखों से प्रकट हुए। पीछे अक्षरों से कलाएँ निकलीं और उनसे शक्तियां फूटीं (देखो महादेवियक्कन सृष्टिय वचनगळु)

५. अधिकांश रहस्यदर्शियों का कहना है कि पांच शक्तियाँ से पंच महाभूतों का विकास हुआ है। किंतु महादेवियक्क कहती हैं कि पाँच शक्तियों से ज्ञान और चार अंतःकरण प्रकट हुए (वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ०-५४)

६. चन्नबसवण्ण का कहना है कि आकाश, वायु, अग्नि, अप्, पृथ्वी आदि पंचमहाभूतों से आत्मा के संपर्क के परिणामस्वरूप ज्ञान, मन, अहंकार, बुद्धि, चित्त इन पाँचों का विकास हुआ है। वे इन पाँचों को पाँच शक्तियों से विकसित नहीं मानते वे साफ कहते हैं कि पंचमहाभूतों से आत्मा के संपर्क से ही इनका विकास हुआ है—(षटस्थल चक्रवर्ती चन्नबसवण्णन वचनगळु—(करणहसिगे)—पृ० ६७५-६७६

७. महादेवियक्क के अनुसार पाँच कारणों से पंचतन्मात्राओं का विकास हुआ है।

८. महादेवियक्क मानती हैं कि पंचतन्मात्राओं से पंचभूतों का विकास हुआ है। यह सांख्य दर्शन के मेल में हैं (सांख्यकारिका-२२ पृ० ६७-६९)

९. प्रभुदेव कहते है कि कालम-९ में अंकित विषय कालम-2 में अंकित सादाख्यों में विलीन हो जाते हैं। (वचनशास्त्रसार खंड-२ पृ० ४७)

१०. तोंटद सिद्धलिंग शिवयोगीजी सृष्टि-रचना क्रम का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं उनका कहना है कि पंचमहाभूतों के अधिष्ठाता सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्म, ही क्रम से आकाश, अग्नि, वायु, आपः, पृथ्वी आदि के अधिष्ठाता है। इसी वचन में आगे कहा गया है कि ब्रह्म से देव, संसार और जड़-चेतन आदि का आविर्भाव हुआ है। (देखो—तोंटद सिद्धलिंग शिवयोगिगळ वचनगळु वचन-६७ पृ० ४१-४४) योगचूड़ामण्युपनिषद् में इससे ठीक मिलता-जुलता भाव देखा जा सकता है—ओम् नित्यम् शुद्धम् बुद्धम् निर्विकल्पम् निरंजनम्-अनादिनिधनमेकम् तुरीयम् यद्भूतम् भवद्भविष्यत् परिवर्तमानम् सर्वदा न वच्छिन्नम् परंब्रह्म। तस्माज्जाता पराशक्तिः स्वयं ज्योतिरात्मिका। आत्मा आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भयः पृथिवी। एवेषाम् पंचभूतानाम् पतयः पंच सदाशिवेश्वर रुद्रविष्णु ब्रह्मागश्चेति।...एतेषाम् ब्रहणो लोका देवतिर्यग्नर-स्थावराश्च जायन्ते। योगचूड़ामण्युपनिषद् श्लोक ७२ पृ० २९४)

११. तोंटद सिद्धलिंग शिवयोगी का भी कहना है कि शिव के गोप्यमुख से आत्मा तथा पाँच अन्य मुखों से पंचमहाभूतों का आविर्भाव हुआ। शिव के नयन और मन से सूर्य और चन्द्रमा का उदय हुआ। आत्मा, सूर्य, चंद्रमा तथा पंचमहाभूत शिव के अष्टरूप माने जाते हैं। महाकवि कालिदास भी शिव के इन अष्टरूपों को मानते हैं (देखो—तोंटद सिद्धलिंग शिवयोगिगळ वचनगळु वचन-६७ पृ०-४५-४६)

१२. अपने 'करणहसिगे' में चन्नबसवण्ण कहते हैं कि पंचभूतों के पंचीकरण से पच्चीस तत्व होते हैं। चन्नबसवण्ण द्वारा वर्णित पंचीकरण प्रक्रिया इस प्रकार हैं —

अग्नि - पृथ्वी के योग से नासिका	—घ्राणेन्द्रिय
अग्नि —अप् के योग से जिह्वा	—रसनेन्द्रिय
अग्नि—तेजस् के योग से नयन	—दर्शनेन्द्रिय
अग्नि—वायु के योग से त्वचा	—स्पर्शेन्द्रिय
अग्नि —आकाश के योग से कान	—श्रवणेन्द्रिय

....

इसी प्रकार पृथ्वी का और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इनके योग से गुदा (मल विसर्जनिन्द्रिय), गुह्य (जजनेन्द्रिय), पाद (गतिका साधन), पाणि (वस्तु

उठाने का साधन), वाक् (बोलने का साधन) आदि का विकास होता है। इन्हें कर्मेन्द्रियां कहते हैं।

इंद्रियों के विषयों का विकास इस प्रकार होता है :—

अप् और पृथ्वी, तेज, वायु, आकाश इनके योग से गंध, रस, रूप, स्पर्श, आदि विकसित होते हैं।

पंच महाप्राणों का विकास इस प्रकार होता है :

वायु और पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश इनके योग से प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान आदि परिणत होते हैं।

अंतःकरणों का विकास इस प्रकार होता है :—

आकाश और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश इनके योग से चित्त, बुद्धि अहंकार, मन और ज्ञान विकसित होते हैं। ज्ञान अंतःकरण नहीं माना जाता।

(देखो तोंटद सिद्धलिंग शिवयोगिगळ वचनगळु—वचन ७४ पृ० ५२)

षटस्थल चक्रवर्ती चन्नबसवण्णनवा वचनगळु (करणहसिगे) पृ०-६६६-६७६—

ए हैंडबुक आफ वीरशैविज़्म—पृ० १४८-१५०

१३. मग्गेय मायिदेवरू कहते हैं कि आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से आपः, आपः से पृथ्वी आदि विकसित हैं। तैत्तिरीय तथा योगचूड़ामण्युपनिषदों में इससे मिलते-जुलते भाव हैं :—

तोंटद सिद्धलिंग शिवयोगिगळ वचनगळु—वचन-७४ पृ० ५१ और भी देखो—

शिवानुभवसूत्र-४ श्लोक-३४-३५ पृ० ५५-५६

तैत्तिरीयोपनिषद्-२ श्लोक-१ पृ०-२३

योगचूडामण्युपनिषद्-७२ पृ०-२९४

संदर्भ

१. एकमेव परब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्

कैवल्यसार श्लोक-१३ पृ० ३

२. विमर्शाख्या पराशक्तिः विश्ववैचित्र्यकारिणी।
यस्मिन् प्रतिष्ठिता ब्रह्म तदिदम् विश्वभाजनम्॥
....
यथा चन्द्रे स्थिरा ज्योत्स्ना विश्ववस्तु प्रकाशिनी।

तथा शक्तिर्विमर्शाख्या प्रकाशे ब्रह्मणि स्थिरा ॥
सिद्धान्तशिखामणि खंड-२ अध्याय-२० श्लो० २-४ पृ० २०१-२०२

३. न शिवेन विना शक्तिः न शक्तिरहितशिवः ।
पुष्पगन्धवदन्योन्यम् मारुताम्बरयोरिव ॥
वीरशैवानन्दचन्द्रिका—वादकाण्ड—पृ० ७

४. ब्रह्मणिस्थासंयोगस्थ······सनातनी
नित्या शक्तिः ज्ञानक्रियासामरस्यात्मिका स्वाभाविकी
विमर्शशक्तिः अस्तीति शेषः । अन्यथा प्रकाशरूपत्वेपि
ब्रह्मणः प्रतिबिम्बनक्षमत्वादि स्वस्वरूप
परामर्शशून्याच्च स्फटिकमणिमुकुरादि प्रकाशवत्—
सच्चिदानन्दात्मक स्वरूप परामर्श शून्यत्वेन
जडतापत्तिरनिवार्यं वेति ।
सा परा स्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते 'स्वाभाविकी
ज्ञानबलक्रिया चेति श्रुतेः चिदानन्देच्छा ज्ञानक्रिया-
दिनामरूपिणी चकारस्यानुक्तार्थ प्रकाशकत्वात्
तत्र चिदानन्दयोरखण्डत्वेन विक्षोभाभावात्
इच्छादिशक्तिनाम् सविषयत्वेन विक्षोभसंभवात्
भेदाभेदस्फुरणमयी मयूराण्डरसगतपादपक्षवर्ण-
वैचित्र्यन्यायेन स्वतादात्म्य क्रोडीकृतचराचर-
विश्वमयी एवम रूपिणी विमर्शशक्तिरविभागपरामर्श-
दक्षायाम् स्वस्थाविभागपरामर्शा दशायाम् गुणत्रयात्मिका
भवति । कथमिति चेत् उच्यते तद्विमर्श शक्तेरंशमात्रे
घृतकाठिण्यत्यायेन क्रियांशस्य ज्ञातृतावियोगात्
ज्ञानांशस्य कर्तृतावियोगात् उत्तमकर्तृताविनिर्मुक्ता-
ज्ञानांशात्सत्वगुणात्मिका विद्याशक्तिरुत्पन्ना भवति
तादशज्ञातृताविनिर्मुक्तक्रियांशात् किंचित्सत्वतमोमिश्र—
रजोगुणशक्तिराविर्भवति
सिद्धान्त शिखामणि—खंड-१ अध्याय-५ भाष्य पृ० ६५-६६

५. घनगंभीर महावारूधि में फेन तरंग बुद्‌बुद् बादि उदित न हों तो और क्या हो सकते हैं?
आत्मारूपी अंबुधि में सकल ब्रह्माण्डकोटि को छोड़ और क्या उत्पन्न होंगे? इसे भिन्न मानने वाली जानकारी-विस्मृति को क्या कहूं? विश्व को समझबूझ के साथ

देखने पर सिमलिगे का चन्नरामलिंग के अतिरिक्त कुछ नहीं है।
वचनशास्त्रसार भाग-१ पूर्वार्द्ध-५-६ पृ० ५

६. वृक्षस्थम् पत्रपुष्पादि वटबीजस्थितम् यथा।
तथा हृदयबीजस्थम् विश्वमेतत्परात्मनः ॥
सिद्धान्तशिखामणि खंड-२ अध्याय-२० श्लो० ७ पृ० २०३

७, तत्र लीनमभूत्पूर्वम् चेतनाचेतनम् जगत्।
स्वात्मलीनम् जगत्कार्यम् स्वप्रकाश्यम् तदद्भुतम् ॥
सिद्धान्तशिखामणि खंड-१ अध्याय-५ श्लो०-७ पृ० १२

८. एवम् रूपिणी विमर्शशक्तिरविभागपरामर्श दशायाम्
स्वस्थाविभागपरामर्श दशायाम् गुणत्रयात्मिका भवति।
सिद्धान्तशिखामणि—खंड-१ अध्याय-५ श्लो० ३६ भाष्य पृ० ६५-६६

९. उत्तम कर्तृत्वाविनिर्मुक्त ज्ञानांशात्सत्वगुणात्मिका विद्या
शक्तिरुत्पन्ना भवति............
अन्योन्याभावबुद्धिरेव तमोगुणशक्तिः......
सिद्धान्तशिखामणि—खंड-१ अध्याय-५ श्लोक ३६ का भाष्य पृ० ६६

१०. सिद्धान्तशिखामणि—खंड-१ अध्याय-५ श्लोक ३६ का भाष्य पृ० ६६

११. ते ध्यानयोगानुगता पश्यन्देवात्मशक्तिम् स्वगुणैर्निगूढ़ाम्
श्वेताश्वतरोपनिषद्-१. ३ पृ० १२१

१२. नारदपरिव्राजकोपनिषद्-९.२ पृ० २८०

१३. सिद्धान्तशिखामणि खंड-१ अध्याय-५ श्लो० ३९ का भाष्य पृ० ६६

१४. गुणत्रयविभेदेन परतत्वे चिदात्मनि।
भोक्तृत्वम् चैव भोज्यत्वम् प्रेरकत्वम च कल्पितम् ॥
सिद्धान्तशिखामणि खंड-१ अध्याय-५ श्लोक ३८ पृ० ६८

१५. किंचित्सत्वरजोरूपम् भोक्तृ संज्ञकमुच्यते।
सिद्धान्तशिखामणि— खंड-१ अध्याय-५ श्लो० ४० पृ० ६८

१६. अत्र प्रेरयिता शंभुश्शुद्धोपाधिमहेश्वरः।
सिद्धान्तशिखामणि खंड-१ अध्याय-५ श्लोक० ४२ पृ० ६९

१७. भोज्यमव्यक्तमित्युक्तम् शुद्धतामसरूपकम्।
सर्वज्ञः प्रेरकः शंभुः किंचिज्ञो जीव उच्यते ॥
अत्यंतगूढचैतन्यम् जडमव्यक्तमुच्यते।
सिद्धान्तशिखामणि—खंड-१ अध्याय-५ श्लो० ४३ पृ० ६९

१८. भोक्ता भोज्यम् प्रेरयिता वस्तुत्रयमिदम् स्मृतम् ।
अखण्डे ब्रह्मचैतन्ये कल्पितम् गुणभेदतः ।
सिद्धान्तशिखामणि खंड-१ अध्याय-५ श्लो० ४१ पृ० ६८-६९

१९. भोक्तारम् प्रेरकम् भोज्यम् माम् विज्ञाय विमुच्यते ।
पारमेश्वरागम—भाग-२ पटल २१ श्लोक० ४३ पृ० १०६

२०. भोक्ता भोग्यम् प्रेरितारम् च मत्वा सर्वं प्रोक्तम् त्रिविधम् ब्रह्मे तत्
श्वेताश्वतरोपनिषद्-१.१२ पृ० १२१

२१. तत्सृष्टवा तदेवानुप्रविशत् ।
तैत्तिरीयोपनिषद्-२.६ पृ० २४

२२. यच्चापि सर्वभूतानाम् बीजम् जदहमर्जुन
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतम् चराचरम् ।
भगवद्गीता-१०-३९

२३. तत्र लीनमभूत्सर्वम् चेतनाचेतनम् जगत्
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-२ श्लोक-७ पृ० ११

२४. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्
ब्रह्मसूत्र-२ १-३३

२५. सो कामयत बहुस्याम् प्रजायेयेति
तैत्तिरीयोपनिषद्-२-६ पृ० २४

२६. सृष्ट्यर्थम् सर्वतत्वानाम् लोकस्योत्पत्तिकारणम् ।
योगिनामुपकाराय स्वेच्छया चिन्त्यते शिवः ॥
वातुलशुद्धाख्य तंत्र तत्वभेदपटल श्लोक २३ पृ० ३ तंत्रसार संग्रह में उद्धृत

२७. सिद्धान्तशिखामणि—अध्याय ५ श्लो० ३९ पृ० ४६

२८. सिद्धान्तशिखामणि—अध्याय ५ श्लो० ४१ पृ० ४७

२९. स्वशक्तिप्रचयो स्य विश्वम्
काश्मीर शैविज्म् में उद्धृत पृ० ४५

३०. यस्मादेतत्समुत्पन्नम् महादेवाच्चराचरम् ।
तस्मादेतन्न भिद्येत यथाकुम्भादिकम् मृडः ॥
सिद्धान्तशिखामणि—खंड-१ अध्याय १० श्लोक २० पृ० १८७

३१. आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः ।

कुटीभवाथधा भाति पटस्स्वास्य प्रसारणात् ॥

सिद्धान्तशिखामणि—अध्याय १० श्लोक ६८ पृ० १३६

३२. सिद्धान्तशिखामणि अध्याय १० श्लोक ६९ पृ० १३६-१३७

३३. समुद्र में फेन तरंग आदि हैं। इतने से वे समुद्र से अलगमाने जाएंगे ? निर्विकार नित्य निरंजन निर्गुण परिपूर्ण निर्विकल्प परब्रह्म शिव से जगत् की उत्पत्ति हुई है— इतने से उसे शिव से अलग कहा जा सकता है ? हे गुहेश्वर ! यह ज्ञान आपकी कृपा से मिले—सम्यक् ज्ञान मिले—वचनशास्त्रसार खंड-१ पूर्वार्द्ध वचन-१४ पृ० १६

३४. हे सकलेश्वर ! मिट्टी से बने बर्तनों की तरह
स्वर्ण से बने गहनों की तरह
जल से बनी धाराओं की तरह
ब्रह्म से निर्मित जग उससे भिन्न कैसे ?

वचनशास्त्रसार खंड-१ पूर्वार्द्ध वचन २० पृ० १३

३५. नादबिन्दुकलारूपा शक्तिः प्रणवरूपिणी।
इच्छा ज्ञान क्रिया रूपा त्रिधा स्यात् सृष्टिकारणम्।

भोगेय मायिदेव प्रभुवाणी (वैराग्यशतक) श्लोक० १२ पृ० ५२

३६. लोकाश्च स्थानाम् देवि जंगमम् चाहमेवहि

पारमेश्वरागम भाग-२ श्लो० ४० पृ० १०९

३७. हे महालिंगगुरु शिवसिद्धेश्वर प्रभु।
अनमोल वस्तु का निर्माण हुआ कैसे, इसका उत्तर यही होगा—
काष्ठ में आग की तरह
क्षीर में घृत की तरह
जल में सूर्य की तरह
दर्पण में प्रतिबिंब की तरह
सर्वत्र हर कहीं उस अनमोल वस्तु की कला परिपूर्ण है।

षट्स्थल ज्ञानसारामृत वचन ७७ पृ० ५६

३८. शिवतत्वात्समुत्पन्नम् जगदस्मान्नभिद्यते।

सिद्धान्तशिखामणि खंड-१ अध्याय १० श्लोक पृ० १८७

३९. ए हिस्ट्री आफ इंडियन फ़िलासफि खंड-३ पृ० ५-६

४०. शंभुः कदाचिन्निजया प्रकृत्या लीलया स्वयम्।
सृष्ट्यर्थम् सर्वतत्वानाम् जगदुत्पत्तिकारणम्।
योगिनामुपकाराय स्वेच्छया चिन्तयच्छिवः।

ध्यायमानात्ततो देवि पराशक्तिरजायत।

सूक्ष्मागम—क्रियापाद-१ २१-२२ पृ० ५३ तंत्रसार संग्रह में उद्धृत

४१. तस्मात् चिद्रूप एव परमेश्वरः स्वेच्छावशात् इयद्विश्वम् अवभासयति

दि तंत्रालोक—भाष्य-६-१०

४२. यथा तंतुभिरुत्पन्नः पटस्तंतुमयः स्मृतः।

तथा शिवात्समुत्पन्नम् शिव एव चराचरम्॥

सिद्धान्तशिखामणि अध्याय १० श्लो० ६७ पृ० १३६

४३. यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च—

·······तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम्॥

मुण्डकोपनिषद्-१ १.७ पृ० १४५

४४. विश्वम् यत्र लयम् याति विभात्यात्मा चिदाकृतिः।

सदानन्दमयस्साक्षात् सा विमर्शमयी कला॥

सिद्धान्तशिखामणि—अध्याय २० श्लोक ३० पृ० ३११

४५. यथा तंतुभिरुत्पन्नः पटस्तंतुमयः स्मृतः

तथा शिवात्समुत्पन्नम् शिव एव चराचरम्।

सिद्धान्तशिखामणि—अध्याय १० श्लोक ६७पृ० १३६

अध्याय-५

वीरशैव धर्म का साधनापथ

वीरशैव धर्म में व्यक्ति की भीतरी-बाहरी पवित्रता शुचिता पर विशेष बल दिया जाता है। आध्यात्मिक साधनाओं में पवित्रता अनिवार्य है। अत: वीरशैव शरणों ने जिज्ञासु की अध्यात्मिक प्रगति हेतु कुछ विधि-विधानों, अनुशासनों और सहायक साधनों को स्थिर किया है इन विधि-विधानों, में दीक्षा का स्थान सर्वोपरि है। दीक्षा एक महत्त्वपूर्ण विधि है जो आगमों[1], तंत्रों[2] और संहिताओं[3] पर अवलंबित समस्या दार्शनिक सम्प्रदायों को मान्य है।

वीरशैव धर्म में दीक्षा[4] का सर्वाधिक महत्त्व है। कुछ विद्वानों के अनुसार लिङ्ग-दीक्षा विधि गर्भस्थ शिशु की शुचिता हेतु गर्भिणी माता के आठवें महीने में सम्पन्न होनी चाहिए। इतर विद्वान[5] कहते हैं कि शिशु के जन्म के बाद जातकर्म संस्कार[7] के अवसर पर लिङ्गदीक्षा विधि संपन्न होनी है।

यों तो दीक्षा[8] व्यक्ति के[9] आठवें वर्ष में सम्पन्न होती है। संस्कार का महान् लक्ष्य व्यक्त करने के लिए दीक्षा की अर्थपूर्ण व्याख्या हुई है। (क्षी)[10] दी शिवदान प्रदान करने और 'क्षा' व्यक्ति से लगे मलत्रय के निवारण के प्रयास का संकेत है।[11]

वीरशैव शरणों का कहना है कि व्यक्ति के त्रिविध शरीर[12] होते हैं जैसे स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण। वे यह भी जानते हैं कि जीव तथा ब्रह्म में शरीर से लगे मलत्रय के कारण अन्तर है।

ये मलत्रय जैसे आणव्, माया और कर्म क्रम से व्यक्ति के कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर से लगते हैं। त्रिविध लिंग दीक्षा मलत्रय[16] का निवारण करने के लिए सम्पन्न होती है।

दीक्षा भी त्रिविध होती है, जैसे वेधा, मंत्र और क्रिया।[17] परमात्मा व्यक्ति के शरीर में तथा सर्वत्र व्याप्त है।

दीक्षा के लिए विव्हल भक्त एक सुयोग्य आध्यात्मिक गुरु के यहाँ जाता है और दीक्षा दान के लिए प्रार्थना करता है। गुरु साल भर उसकी परीक्षा लेता है और शिष्य की सच्ची आकांक्षा और सद्व्यवहार से संतुष्ट होने के बाद दीक्षा प्रदान करने पर सहमत होता है। कोई शुभ मुहूर्त स्थिर होता है और स्नान आदि रस्में भक्त की बहि-

रंग शुद्धि हेतु पूरी की जाती हैं। उसके बाद गुरु भक्त को सामने बैठने को कहता है। शिवयोग में निष्णात आध्यात्मिक गुरु शिष्य के मस्तक पर अपनी दाईं हथेली रखता है, उसमें निहित परमात्मा, को जगाता है, कारण शरीर में भावलिंग प्रतिष्ठापित करता है[21] और आणवमल के निवारण का प्रबल करता है। कारण शरीर[23] में भावलिंग प्रतिष्ठापन की यह प्रक्रिया[22] पारिभाषिक तौर पर वेधादीक्षा[24] कही गई है।

आध्यात्मिक गुरु शिष्य के दायें कान में विस्तार से[25] महातंत्र का उपदेश करता है। महामंत्र सप्त कोटि मंत्रों में[26] सर्वोत्तम माना गया है। वह मांसपिंड को मन्त्रपिंड में परिवर्तित[27] करने में समर्थ भी कहा गया है। महामन्त्र के पंचादार शिव के ही प्रतीक हैं। महामन्त्र का उपदेश देने की प्रक्रिया द्वारा गुरु शिष्य के सूक्ष्म शरीर[30] में प्राणलिंग प्रतिष्ठापित करता है और शरीर में लगा मायामल दूर करने का प्रयत्न करता है।[31] यह प्रक्रिया पारिभाषिक दृष्टि से मंत्रदीक्षा मानी गई है।[32]

इसके बाद गुरु परमात्मा का आवाहन करता है और संस्कार से परिष्कृत लिंग में उसका प्रतिष्ठापन करता है। गुरु इष्टलिंग नाम का वह लिंग देता हैं। वह इष्टलिंग इसलिए है कि भक्त के सारे मनोरथ पूरे करने व अकल्याण को दूर करने की क्षमता उसमें रहती है।[33] यह इष्टलिंग शिष्य के स्थूल शरीर पर धारण किया जाता है।[34] शिष्य का कर्ममल दूर करने के लिए स्थूल शरीर पर इष्टलिंग[35] धारण की प्रक्रिया पारिभाषिक तौर पर क्रियादीक्षा मानी गई है।[36] गुरु शिष्य को आदेश देता है कि वह स्थूल शरीर पर इष्टलिंग धारण करे[37] और दिन में तीन बार उसका पूजन करे। वह भक्त को पूजा-विधान भी सिखा देता है। वीरशैवों का विश्वास है कि सदा लिंग धारण किये रहने से[38] सभी प्रकार की अशुचिता दूर हो जाती है। अतः वीरशैव सभी प्रकार के सूतकों से मुक्त[39] हैं। किंतु नियमित रूप से लिंग-पूजन उन्हें करना होता है।[40] इसमें कोई चूक न होनी चाहिए। दीक्षा संस्कार के बाद दीक्षित व्यक्ति का नया रूप हो जाता है। उसके पूर्वाश्रम या वर्ण की उपेक्षा कर दी जाती है। वह अन्य वीरशैवों के समुदाय में समान अधिकार का उपभोग करने वाला बन जाता है।[41] वास्तव में वह आध्यात्मिक गुरु के 'हस्तकमल' के स्पर्श से नया जन्म पा लेता है।[42]

इस प्रकार व्यक्ति त्रिविध दीक्षा से पवित्र हो जाता है।[43] वीरशैव समुदाय के प्रत्येक सदस्य के लिए यह संस्कार अनिवार्य है[44] और वीरशैव समुदाय में प्रवेश पाने की इच्छा रखने वालों के लिए भी यह नितांत आवश्यक है।

दीक्षा संस्कार[45] से समस्त शरीर का पूरा परिवर्तन हो जाता है[46] और व्यक्ति आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त हो सकता है। साथ ही वीरशैव धर्म में परमतत्व तक पहुंचने की आध्यात्मिक प्रगति में सहायक और भी साधन बताए गए हैं।

अष्टावरण :—वीरशैव धर्म में 'आवरण' पद का साभिप्राय प्रयोग होता है।

आवरण धातु से निष्पन्न पद है जिसका अर्थ है ओढ़ना, आड़, उपकरण आदि। वह साधक को सांसारिक आघातों से क्या बचाता है, आध्यात्मिक साधना में सहायक होता है और विपदाओं से उसकी रक्षा करता है। अधिकांश धर्मों में परब्रह्म के साक्षात्कार के लिए सहायक उपकरण होते हैं। चन्द्रज्ञानागम[47] में कहा गया है 'आवरण' भक्त को भवसागर से पार पहुंचा देते हैं। हर तरह से वे भक्त की रक्षा करते हैं और उसकी आध्यात्मिक साधना में सहायक होते हैं। इस प्रकार दीक्षा ग्रहण करने वाले के लिए 'आवरण' विशेष उपयोगी है।

आवरण आठ हैं, जैसे, गुरु, लिङ्ग, जङ्गम, पादोदक (तोई) प्रसाद, भस्म, रुद्राक्ष और मंत्र[48] इन आठों का वर्णन इस प्रकार है।

गुरु—अष्टावरणों में गुरु का स्थान पहला है। यही जिज्ञासु को त्रिविध लिंग द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान की दीक्षा देता है और उसके शरीर से लगा मलत्रय दूर करता है। दूसरे शब्दों में जीव के शरीर में अवस्थित लिङ्ग ही उसे इष्टलिंग रूप में दिया जाता है।[49] बसवेश्वर ने इसे एक दृष्टान्त द्वारा समझाया है। मिट्टी और स्वर्ण घड़े और गहने बनाने के लिए आवश्यक हैं। इसी प्रकार लिङ्ग के साक्षात्कार के लिए सर्व प्रथम गुरु आवश्यक है।[50] गुरु आध्यात्मिक जीवन का कारण है।[51] वही शिष्य के मोक्ष के लिए मूल है।[52] गुरु-कृपा बिना कोई इस क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता।

शैवागमों तथा इतर ग्रन्थों में गुरु के लक्षण इस प्रकार बताये गये। गुरु दर्शनों में निष्णात है। कई गुणों से विभूषित है, बुद्धिसंपन्न है, लोभ, ईर्ष्या आदि से मुक्त है। थोड़े में कहना हो तो कह सकते हैं कि ईश्वर की भांति वह अंग तथा लिंग के विविध सोपानों का रहस्य जानता है। षटस्थल सिद्धान्त की पूरी जानकारी रखता है। वह अपनी आध्यात्मिक शक्तियों के बल पर लिंग दीक्षा द्वारा शिष्य की आध्यात्मिक प्रगति के पथ प्रदर्शन में पूर्ण समर्थ है।[53] अतः वह शिव ही है[54], उससे भी ऊंचा है। शिव के प्रकोप से गुरु शिव की रक्षा कर सकता है, किन्तु गुरु के प्रकोप से शिव शिष्य की रक्षा नहीं कर सकता।[55]

चन्द्रज्ञानागम में तीन प्रकार की तीर्थयात्राओं का वर्णन है। जैसे गुरुयात्रा, देवयात्रा और तीर्थयात्रा। इनमें गुरुयात्रा ही विशेष फलदायिनी है।[56] चन्द्रज्ञानागम में स्पष्ट कहा गया है कि गुरु-कृपा पोषित व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी है।[57] यह शिव का आदेश है कि गुरु से ऊंचा कोई नहीं है।[58]

गुरु के त्रिविध कार्य होते हैं—दीक्षा, शिक्षा और मोक्ष प्राप्ति में सहायता।

दीक्षागुरु के नाते लिंग दीक्षा द्वारा वह शिष्य की आध्यात्मिक प्रगति में सहायक क्षिशण देता है।[60] मोक्ष गुरु या ज्ञानगुरु के नाते वह शिष्य को धार्मिक

अनुशासन का मर्म समझाता है। और अनुपम आनन्दानुभूति प्राप्त करने के लिए हर तरह से उसकी सहायता करता है।

एक ही गुरु भिन्न-भिन्न समयों में ये त्रिविध कार्य कर सकता है या तीन अलग गुरु इसे कर सकते हैं। इस प्रकार गुरु[62] शिष्य का मलत्रय दूर करता है, उसका शरीर परिवर्तित करता है, उसे त्रिविध लिंग प्रदान करता है और आत्मसाक्षात्कार हेतु उसे आवश्यक शिक्षा दे सत्पथ पर आगे बढ़ाने में मार्गदर्शक बना रहता है। अतः गुरु का इतना मान है, आदर है और वह सबसे बड़ा माना जाता है।

लिंग—लिङ्ग उपासना का अवलम्बन है।[63] वह उपासक की परमात्मा से भिन्न कदापि नहीं है।[64] परमात्मा (परब्रह्म) भक्त के शरीर में ही रहता है।[65] गुरु आध्यात्मिक शक्ति के सहारे उसका आवाहन होता है और वह परिष्कृत लिंग में प्रतिष्ठापित होता है। वही इष्टलिंग रूप में भक्त को दिया जाता है।[67] बह इष्टलिंग इसलिए कहा गया है कि उससे उपासक के मनोरथ पूरे होते हैं।[68] और अकल्याण दूर हो जाता है। लिंग शिव-शक्ति के अविनाभाव सम्बन्ध का द्योतक है।[70] लिंग परब्रह्म है, निराकार निष्कल व गुणातीत है। वही भक्तों की भक्ति से प्रभावित उनकी आध्यात्मिक साधना में सहायता पहुंचाने के लिए[71] साकार हो[72] उठता है। वीरशैव शरणों का स्पष्ट कथन है कि निराकार परब्रह्म का साकार द्वारा ही साक्षात्कार संभव है।[73] वे यह भी कहते हैं कि भक्त को अपने अंग[75] पर सदा लिंग[74] धारण करना चाहिए। भक्त को यह चेतावनी भी दी गई है कि लिंग से वह पल भर के लिए भी अलग न रहे।[76]

लिङ्ग ही उपास्य है और अंग ही उपासक है। और अंग (जीव) लिंग का ही अंश है।[77] अतः लिंगोपासना के सहारे अंग अपना मूल रूप प्राप्त करना चाहता है। यह अहंग्रहोपासना कही गई है। भक्त (अंग) इष्टलिंग[78] का पूजन करता है और बाद को निर्निमेष दृष्टि से इष्टलिंग पर दृष्टि स्थिर करता है, प्राणलिंग[79] का मनन करता और भावलिंग[80] का साक्षात्कार करता है। ये अंतिम दोनों क्रम से शिष्य के सूक्ष्म और कारण शरीर[81] में होते हैं। इस प्रकार इष्टलिंग[82] प्राणलिंग और भावलिंग को जानने और उसके साक्षात्कार में सहायक है।[83]

जङ्गम—जंगम पद गम् से निष्पन्न है जिसका अर्थ है गति।[84] इससे ज्ञान का भी बोध होता है।[85] वीरशैव धर्म में जंगम वह व्यक्ति है जो शिवज्ञान का मर्मज्ञ है। वीरशैव धर्म के सिद्धांतों का प्रचार करने जगह-जगह घूमता रहता है और भक्तों की आध्यात्मिक साधना में उनका मार्गदर्शक है।[86] वीरागम में कहा गया है कि मानव-कल्पना के लिए स्वयं शिव जंगम रूप में गतिशील रहता है।[87] जंगम् पवित्र ज्ञान का उपदेश देनेवाला अधिकारी व्यक्ति है क्योंकि उसी ने शिव के सही रूप को देखा है।[88]

कई ग्रन्थों में जंगमों के लक्षण वर्णित मिलते हैं। जंगम शांत मन के और

सच्चिदानन्द स्वरूप हैं।[90] उनमें कोई मोह नहीं। उनमें कोई कमियां नहीं।[91] थोड़े में कहना हो तो उन्हें भगवद्गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ के समान कह सकते हैं। वे एक स्थान पर ठहरनेवाले नहीं, किन्तु लोकहितार्थ नदी की तरह बहते रहते हैं।

शैवागमों और वीरशैव धर्म से संबद्ध इतर ग्रन्थों में जंगमों की महिमा का उल्लेख बार बार हुआ है। वे लिंग की अपेक्षा श्रेष्ठ माने गये हैं। क्योंकि लिंग साक्षात्कार में सहायता पहुंचाने हेतु आवश्यक उपदेश द्वारा वे भक्त का मार्गदर्शन करते हैं। जंगम तीन प्रकार के होते हैं—'स्वयं', 'चर', 'पर'[96] यह ब्रह्म साक्षात्कार के आनुपासि विकास का द्योतक है। वास्तव में गुरु, लिंग और जंगम परम तत्व के त्रिविध रूप मात्र हैं।

पादोदक : अष्टावरणों में यह चौथा आवरण है। वीरशैव धर्म में 'पादोदक' की बड़ी मार्मिक व्याख्या मिलती है।[89] 'पाद' गुरु का प्रतीक है और 'उदक' शिष्य का द्योतक है। दीक्षा प्रक्रिया से दोनों में एकीभाव संभव होता है। 'पादोदक' की एक और व्याख्या भी इस प्रकार मिलती है। 'पाद' आनंद और 'उदक' ज्ञान के प्रतीक हैं।[99] अतः यह कहा जा सकता है कि गुरु की कृपा से गुरु-शिष्य का ऐक्य 'पादोदक' से सुलभ होता है। इससे शिष्य को ज्ञान-आनन्द की अनुभूति होती है। 'पादोदक' की यह तीसरी व्याख्या भी है 'पा' ज्ञान प्रदान करना, 'दो' सूतक निवारण करना, 'द' जन्म-मरण प्रक्रिया से मुक्ति दिलाना और 'क' कर्म बंधन से छुटकारा दिलाना।[100] इस प्रकार अज्ञान को दूर करने का पुनर्जन्म का अन्त होने देने[101] और परम ज्ञान प्रदान करने में 'पादोदक' सहायक है।

गुरू—लिंग और जंगम ये तीनों अभिन्न हैं। गुरु या जंगम स्नान और अन्य आचारों के बाद अपने इष्टलिंग की उपासना करता है। पीछे भक्त धर्मशास्त्र की विधियों के अनुरूप गुरू या जंगम के चरण धोता है और पादोदक तैयार करता है। यह गुरू पादोदक कहा जाता है। जंगम के चरणों का बना उदक जंगम पादोदक और अपने इष्टलिंग का बना उदक लिंग-पादोदक कहा जाता है।[102] वीरशैवों का विश्वास है कि शिष्य के अंग का मलत्रय पादोदक से घुल जाता है और त्रिविध लिंग के साक्षात्कार में उसे इससे सहायता पहुंचती है।[102] पादोदक का वर्गीकरण दीक्षा-पादोदक, शिक्षा-पादोदक और ज्ञान पादोदक नामों से भी मिलता है।[104]

प्रसाद—'प्रसाद' का अर्थ है अनुग्रह। धार्मिक साहित्य में इस 'प्रसाद' पद का प्रयोग ईश्वर का भक्त पर 'अनुग्रह या कृपा' के अर्थ में होता है। वीरशैव धर्म के अनुसार सभी पदार्थ मलीन हैं। पदार्थों को मलरहित बनाकर और पवित्र करके ही काम में लाना होता है। अतः भक्त पहले ईश्वर को भोग चढ़ाता है और पीछे खुद उसे ग्रहण करता है।[105] कोई पदार्थ ईश्वर को अर्पित हुए बिना काम में न लाया जाय, यह

चेतावनी भी है।[106] धर्मशास्त्र में वर्णित प्रक्रिया के अनुरूप पदार्थ 'प्रसाद' में परिणत होते हैं।[107] इससे भक्त उन पदार्थों में लगे मलिनता के दोष से बच जाता है और मन में शांति का अनुभव करता है। गुरू, लिंग और जंगम को अर्पित और उनके आध्यात्मिक स्पर्श से पुनीत पदार्थ पारिभाषिक दृष्टि से सिद्ध और प्रसिद्ध प्रसाद होते हैं।[108]

इष्टलिंग, प्राणलिंग और भावलिंग को चढ़ाया भोग भी शुद्ध, सिद्ध और प्रसिद्ध प्रसाद माना जाता है।[109]

पादोदक और प्रसाद का भक्त के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भक्त सात्विक विचारों को ग्रहण करने योग्य बन जाता है। जो कुछ मिले उसे वह ईश्वर का ही अनुग्रह मानने लगता है।

धार्मिक उद्देश्य के अतिरिक्त पादोदक और प्रसाद का सामाजिक महत्व भी है। भक्त दूसरों के साथ एक ही स्थान पर श्रद्धा से पादोदक और प्रसाद ग्रहण करते हैं। इससे जाति, रंग, संप्रदाय. वर्ग आदि के भदभाव दूर होने में सहायता पहुंचती है। इस प्रकार वीरशैवों में पादोदक और प्रसाद भाईचारा और एकता बढ़ाने में सहायक हैं।

विभूति—'विभूति' पद का अर्थ है 'समृद्धि' 'संपत्ति' आदि।[110] किंतु वीरशैव धर्म में यह 'पवित्र भस्म' का पर्याय है जो धर्मशास्त्रों में निरूपित विधानों के अनुरूप बनाया जाता है।[111]

उसके विविध प्रयोजन व्यक्त करने के लिए 'विभूति' पद के कई नाम मिलते हैं। वह समृद्धि लाती है, इसलिए वह विभूति है।[112] वह तत्वों को आलोकित करने के नाते 'भासित' कहलाती हैं। पापक्षय में समर्थ होने से वह भस्म है।[113] वह विपदाओं का अंत करने से 'क्षार' है। भूत-प्रेत से बचाने के कारण वह 'रक्षा' है।[114] कई ग्रंथों में विभूति की महिमा का विस्तृत वर्णन देखा जा सकता है।[115]

चन्द्रज्ञानागम में कहा गया है कि अंग के बत्तीस भागों में भस्म लगाना चाहिए।[116] [116] भस्म आंतरिक अशुचित-मलत्रय तथा इतर दोषों को जला देता है।[117] भस्मजाबालोपनिषद [118] में भस्म तैयार करने का विधान, अंग के विविध भागों पर उसे लगाने का तरीका और उसकी महिमा वर्णित है।

रुद्राक्ष—शैवगमों और रुद्राक्षजाबालोपनिषद् दोनों में कहा गया है कि रुद्राक्ष शिव के नेत्रों से निकला। इसलिए उसका नाम 'रुद्राक्ष' पड़ा।[119] शिव ने देवों की रक्षा करने के लिए त्रिपुर के सौधों को जलाना चाहा। अतः निर्निमेष नयनों से उन्हें देखा।[120] उसके एकाग्र और निर्निमेष नयनों से आंसू गिरे और रुद्राक्ष में परिणत

हुए ।[121] साधक के बारे में कहा गया है कि आंतरिक अशुचिता को जलाने और आत्म-साक्षात्कार हेतु उसे निश्चल और स्थिर दृष्टि से इष्टलिंग पर ध्यान लगाना चाहिए। कई ग्रंथों में अंग पर रुद्राक्ष पहनने का फल वर्णित मिलता है ।[122] रुद्राक्ष जाबालोपनिषद् में रुद्राक्ष की उत्पत्ति और उसे पहनने से मिलने वाला फल इनके बारे में मिलते जुलते विचार लक्षित होते हैं ।[123]

मंत्र—साधक के लिए मंत्र आठवां आवरण है। वह मंत्र इसलिए कहा जाता है कि विपत्तियों से वह व्यक्ति की रक्षा करता है और उसका उच्चारण अंततोगत्वा मोक्ष-प्राप्ति का साधन होता है ।[124] मंत्र महत्वपूर्ण और अनमोल शब्द है जो एक देव का प्रतीक है। शिव को अभिव्यक्त करने वाला मंत्र है 'नमशिशवाय' ।[125] इसमें पांच अक्षर हैं और इसका अर्थ 'शिव को प्रणाम ।' यह मंत्र पंचाक्षरमंत्र कहा गया है । किंतु प्रणव 'ओम्' से युक्त होने पर यह 'षड्क्षर मंत्र' कहा जाता है ।[128] पंच्चाक्षर मंत्र की विशिष्ट महत्ता का वर्णन करने के लिए कन्नड़ में बड़े-बड़े कवियों ने[129] श्रेष्ठ रचनाएं लिखी हैं ।

सत्य के अनुसंधान में ये अष्टावरण साधक के लिए विशेष उपयोगी है ।

वीरशैव धर्म में 'स्थल' एक पारिभाषिक शब्द है। अध्यात्म की दृष्टि से स्थल परब्रह्म है[130] जो व्यक्त - विश्व का मूल स्रोत है और जिसमें अंत में सब पदार्थ विलीन हो जाते हैं ।[131] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह एक सोपान है। इसलिए साधक की आध्यात्मिक प्रगति में स्थल एक सोपान है।

वीरशैव धर्म के अनुसार आध्यात्मिक साधना के आरंभ में भक्त और देन या उपासक-उपास्य में अंतर है । पारिभाषिक तौर पर वे अंग-लिंग माने जाते हैं ।[132]

पंचाननों—लिंगाचार, सदाचार, शिवाचार, भृत्याचार, गणाचार आदि के अनुरुप भक्त अष्टाबरणों की सहायता से उत्तरोत्तर प्रगति करता जाता है तो अंग-लिंग का अंतर धीरे-धीरे मिट जाता है और अंत में अंग (जीव) लिंग (ब्रह्म) में समरस हो जाता है ।

इस प्रकार आरंभ में रहा अंतर धीरे-धीरे लुप्त होता है और अंग-लिंग की समरसता स्थापित होती है। यह प्रक्रिया छः सोपानों में विभाजित है। इससे साधना का स्तर सूचित होता है । ये षट्स्थल हैं—भक्त, महेश, प्रसादि, प्राणलिंगि, शरण और ऐक्य ।[135] भक्ति तथा दिव्य गुणों के उत्कर्ष में क्रमिक विकास जो होता है उसी का संक्षेप में वर्णन यहां किया जा रहा है ।

गुरु से मिले इष्टलिंग[136] में भक्ति भक्त का परम कर्तव्य है । उसे निर्मल और उदात्त जीवन बिताना होगा ।[137] इस अवस्था की भक्ति पारिभाषिक तौर पर श्रद्धा

भक्ति मानी गई है। यह सोपान भक्तिस्थल कहा गया है।[139]

भक्ति का क्रमिक उत्कर्ष होता है और इष्टलिंग में भक्त की निष्ठाभक्ति गहरी होती है। यह माहेश्वरस्थल कहा गया है।

आध्यात्मिक साधना के पथ पर ज्यों-ज्यों भक्त बढ़ता जाता है त्यों-त्यों वह प्रकृति और सृष्टि में व्याप्त मल को पहचानने लगता है। अर्चना और अर्पण की विधियों से लिंग की उपासना करने पर पदार्थों की अशुचिता दूर हो जाती है और उसे प्रसाद[140] मिल जाता है। भक्त की इष्टलिंग (शिवलिंग) में अवधान भक्ति होती है। यह सोपान प्रसादिस्थल कहा गया है।[141]

भक्त इस समय अंतर्मुखी ध्यान में लीन हो जाता है और अपने को प्राणलिंग से अभिन्न अनुभव करने लगता है।[142] इस सोपान में चरलिंग में अनुभावशति स्पष्ट होती है और यह प्राणलिंगस्थल कहा गया है।

फिर भक्त का उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता है और वह अपने में ही दिव्य ज्योति का अनुभव करता है। वह लिंग को निःशेष भाव से सब कुछ अर्पित कर देता है और प्रसादलिंग में आनंद भक्ति का अनुभव करता है। यह स्थल शरण स्थल कहा गया है।

अंतिम सोपान में अंग-लिंग के बीच का मामूली अंतर भी नहीं रह जाता है। जैसा ऊपर कहा गया है अंग धीरे-धीरे लिंग के समस्त गुण आत्मसात् करता जाता है और अपना मूल रूप प्राप्त कर लेता है जो लिंग से भिन्न नहीं है।

इस सामरस्य भावना का नाम ऐक्य स्थल है और यह भक्ति समरसभक्ति कही गई है।

वीरशैव धर्म भक्ति, ज्ञान और क्रिया को समान महत्व देता है। इन तीनों की समरसता ही समन्वयात्मकता ही ब्रह्म से ऐक्य की ओर आध्यात्मिक प्रगति को बढ़ावा देती है। व्यक्ति का समस्त शरीर और इंद्रियां छः इंद्रियों में छः लिंगों के प्रतिष्ठापन से पवित्र होती है। उसका दावा है कि मोक्ष के लिए लोक का परित्याग आवश्यक नहीं है। वह केवल शुद्ध और पवित्र जीवन पर जोर देता है और जीवन के सभी क्षेत्रों में परिपूर्णता का समर्थन करता है। वह अंधविश्वास की निंदा करता है। जाति, संप्रदाय आदि की उपेक्षा कर वह प्रत्येक को सामाजिक समानता और अध्यात्मिक स्वतंत्रता प्रदान करता है। श्रम की महत्ता पर बल दिया गया है। अर्चना और अर्पण की विधियों से वह समस्त पदार्थों को प्रसाद में परिणत करने का दिव्य उपाय अपना चुका है। इस प्रकार उसका महान लक्ष्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास और परिपूर्ण शुद्धि रखता है।

संदर्भ

१. दीयते लिंग संबंधः क्षीयते च मलत्रयम् ।
दीयते क्षीयते यस्मात् सा दीक्षेति निगद्यते ।।
कारणागम क्रियापाद पटल-१ श्लो० १२ पृ० २

२. 'साधना हेतु दीक्षा अनिवार्य है, यह सर्वमान्य है। सिद्धि उसी का परिणाम है'
प्रिंसिपल्स आफ तंत्र पृ० ५८१

३. अत ऊर्ध्वम् प्रवक्ष्यामि दीक्षाया लक्षणम् परम् ।
यामवाप्य विशुद्धात्माः वैष्णवः सिद्धिमि (मृ?) च्छति ।।
परमसंहिता अध्याय-८ श्लोक १ पृ० ५६

४. अनंतजन्ममरण कारणात्पाशसच्चयात् ।
मुमुक्षुराचरेद्दीक्षाम् शांभवीम् पाशकृंतिनीम् ।।
न विना तत्प्रसादेन प्राणिनाम् बंधविन्युतिः ।
लभ्यते तत्प्रसादो पि नानया दीक्षया विना ।
वेदानुशासनमिदम् एतद्वे शिवशासनम् ।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-१ श्लो० ४५-४६ पृ० ५

५. वीरशैवस्थितानाम् च स्त्रीणाम् गर्भाष्टमे गुरुः ।
पंचसूत्रकृतम् लिंगम् धारयेद्विधिवच्छुभम् ।।
वीरशैवाचार प्रदीपिका अध्याय-१ श्लो० ८२ पृ० ११

६. वीरशैव धर्म में दीक्षा और लिंगधारण साथ साथ संपन्न होते हैं।
देखो—ए हैंडबुक आफ वीरशैविज़्म

७. इति बध्वा चेन्द्रलिंगम् प्रतीक्षेत शिशोर्जनीम् ।
संस्कुर्यात्तनयम् जातकर्मणा जननात्परम् ।।
जातम् कुमारम् संप्राप्य गुरुण्ण कारयेद्बुधः ।
पूर्वमेव विनिर्दिष्टम् लिंगम् पंचामृतैः पृथक ।।
वीरशैव सदाचार संग्रह अध्याय-१० श्लो०-८६-८७ पृ० ६५

८. गर्भाष्टमवर्षध्र्युक्त शिवदीक्षा संस्कार सिद्ध
श्रुत्यक्षेपदेष्ट्रदेशिकमुखोदित···
श्रीकरभाष्य जिज्ञासाधिकरण पृ० ३

९. गर्भाष्टमे कृता दीक्षामुख्या सा षोडशावधि ।
गौणा तदूर्ध्वमधमा वीरशैवान्वयायिनाम् ।

वीरशैव सदाचार संग्रह अध्याय-११ श्लो०-२ पृ० ९९

१०. दा दाने क्षी क्षस्य इति धातुद्वयेन दीक्षाशब्दस्य निर्वचनमुच्यते
दीयते शिवविज्ञानम् क्षीयते पाशबन्धनम् ।
यस्मादतः समाख्याता दीक्षेतीयम् विचक्षणैः ॥
वीरशैव सदाचार संग्रह अध्याय-११ श्लो० ८ पृ० १००

११. देखो—सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-१ श्लो०-१० पृ० २

१२. तनुत्रयगतानादि मलत्रयभसौ गुरुः ।
दीक्षात्रयेन संदह्य लिंगत्रयमुपादिशेत् ॥
कारणागम क्रियापाद पटल-१ श्लो० १० पृ० २

१३. वेधामनुक्रियाकारा दीक्षा शैवी शिखा मता ।
तच्छिखा लिंगमित्युक्तम् कर्ममायाणुवासना ॥
रूपम् कर्पूरमाख्यातम् तऊध्धोङ्गमितीरतम् ।
एतलिंगगांगसंयोगः शिखिकर्पूरयोगवत् ॥
शिवानुभवसूत्रम् अध्याय ५ श्लो० ५५-५६ पृ० ७४

१४. पृथिवी आदि पांच तत्वों से जो बना है वही स्थूल तनु है। वायुपंचक ज्ञान कर्मेन्द्रियां दक्ष हैं। मन बुद्धि ये दो हैं अंतःकरण। ये सत्रह मिलाकर लिंग भौतिक कहा जाता है सूक्ष्मतनु।
अहंकार, चित्र, मूलात्मा इन तीनों के योग से कारणतनु।
वचनशास्त्रसार खंड-२ वचन-१ पृ० १०१-१०२

१५. आणवम् मायिकम् चैव कार्मिकार च यथाक्रमम् ।
मलत्रयमनादीदम् तनुत्रयगतम् भवेत् ।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-३ श्लो-४६ पृ० २१ .
और भी देखो—शिवानुभवसूत्रम् अध्याय-५ पृ० ७६-७९

१६. सग्दुरुनाथ के उपदेश से आणव, मायिक, कार्मिक इन मलत्रयों का संपर्क छूटेगा—निर्वाण पदैकहेतु बनेगा—
मोग्गेय मायिदेव प्रभुवाणी (शिवाधव शतक) श्लोक १६ पृ० ३

१७. सा दीक्षा त्रिविधा प्रोक्ता शिवागमविशारदैः ।
वेधारूपा क्रियारूपा मंत्ररूपा च तापस ।
सिद्धान्तशिखामणि खंड-१ अध्याय-६ श्लो० १२ पृ० २५

१८. गुरुश्च गुणवान्प्राज्ञः परानन्दावभासकः ।
तत्वविच्छिवसंसक्तो मुक्ति दो न तु चापरः ।

निरपेक्षम् मुनिम् शान्तम् निर्वैरम् समदर्शिनम् ।
गुरुं तमेव प्रणमेन्नापरम् मतिमान्नरः ॥
वीरमाहेश्वराचार संग्रह खंड-१ अध्याय ६ श्लोक १०-११ पृ० ८४

१९. गुरुश्च स्वाश्रितम् शिष्यम् वर्षमेकम् परीक्षयेत्
वीरमाहेश्वराचार संग्रह खंड-१ अध्याय-६ श्लोक-१२ पृ० ८४

२०. अथ कालम् च देशम् च प्रवक्ष्यामि यथा तथा।
शुभकाले शुभे मासे शुभतिथ्याम् शुभे हनि ।
शुभप्रदेशनक्षत्रे दीक्षाम् कुर्याद्विचक्षणः ।
वीरशैव सदाचार संग्रह अध्याय-१३ श्लोक-१ पृ० १७२

२१. संयुयोज त्रिधाभूतपरादीक्षाबलेन तु ।
योगांगे भावलिंगम् तु वेधादीक्षाबलेन वै ।
शिवानुभवसूत्रम् अध्याय-५ श्लोक ५९ पृ० ७५

२२. वही श्रेष्ठ लिंगभक्त है जिस पावनात्मा सुपुत्र के मस्तक पर गुरुदेव के हाथ पड़ जाएं, चित्कला चिद्भावकला में कारण जो इष्टलिंग में स्वयं परिणत हो जाए ।
मैलारद श्री बसवलिंग शरणर कृतिगळु श्लो० ४ पृ० २

२३. सिर पर करकमल रख देने से कारणदेहदीक्षा मानी जाए…
मोग्गेय मायिदेव प्रभुवाणी (शिवाधव शतक) श्लो० ७७ पृ० १२

२४. गुरोरालोकमात्रेण हस्तमस्तकयोगतः ।
यः शिवत्वसमानेशो वेधादीक्षेति सामता ।
सिद्धान्तशिखामणि—खंड-१ अध्याय-६ श्लोक १३ पृ० ८६

२५. तस्य दक्षिणकर्णेतु निगूढमपि कीर्तयेत् ।
छंदो रूपम् ऋषिम् चास्य देवतान्यासपद्धतिम् ।
सिद्धान्तशिखामणि खंड-1 अध्याय-६ श्लोक २१ पृ० ८८

२६. वक्ष्ये हम् ते महासेना शिवमंत्रपरायण ।
सप्तकोटिषु मंत्रेषु मुख्यम् प्रणवपंचकम् ॥
सप्तकोटिमहामंत्रा उपमंत्रास्त्वनेकशः ।
पंचाक्षर्याम् प्रलीयन्ते पुनस्तत्र विनिर्गता ॥
अनादिवीरशैवसार संग्रह खंड-२ अध्याय-२१ श्लोक २० पृ० ६७

२७. अथ मांसपिण्डम् मंत्रपिण्डम् विद्यातुम् मंत्रोपदेशम् कुर्यादित्याह ॥
सिद्धान्तशिखामणि खंड-१ अध्याय-६ अवतरणिका पृ० ८७

बसवण्ण मंत्रपिण्ड कहलाये, मांसपिण्ड नहीं—
शून्यसंपादने अध्याय-४-१५ पृ० ८८

२८. ओमित्येकाक्षरे मंत्रे स्थित सन्तिहितः शिवः ।
मंत्रे षड्क्षरे सूक्ष्मे पंचाक्षरतनुः शिवः ।
शिवमेकम् विजनीयान्मंत्रमूर्ति परः शिवः ॥
अनादिवीरशैवसार संग्रह खंड-२ श्लोक ७-८ पृ० ६५
और भी देखो :—
विपुल वेद वेदान्तसार
सकल लोक के जनहित का आधार
सप्कोटि महामंत्रों की खान
....

श्रीहर नाम का साकार रूप
श्रीमत्परम पंच ब्रह्माण्ड का
श्रीमत्परतत्व का मूल
श्री हंपि के विरुपाक्ष को दिखाने वाले श्री गुरुपंचाक्षरि
वचनशास्त्र सार खंड-२ वचन-२ पृ० ३६१

२९. लिंगे प्राणम् विनिक्षित्य प्राणे लिंग च शांभवम् ।
तल्लिगम् स्थापयेत् शिष्ये सम्यग्ध्यात्वैकभावतः ॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-५ श्लोक ४४ पृ० ३६

३०. ......विस्तृत मंत्र कानों में सुनाया गया—
सूक्ष्म शारीरपदैक दीक्षा......
मोग्गेय मायिदेवन प्रभुवाणी (शिवाधन शतक) श्लोक ७७ पृ० १२

३१. यथापुरत्रयम् दग्धम् युगपत पूर्ववैरिणा ॥
तथा मलत्रयम् दाधम् युगपद्देशिकात्मना ॥
शिवानुभवसूत्रम् अध्याय-५ श्लोक ५४ पृ० ७४

३२. हे प्रभु महालिंग गुरु शिवसिद्धेश्वर प्रभु ।
वेधादीक्षा, मंत्रदीक्षा, क्रियादीक्षा इस दीक्षात्रय से तनुत्रय का पूर्वाश्रय लुप्त होगा, लिंगत्रय से संपर्क स्थापित होगा

श्री गुरु अपने हाथ शिष्य के मस्तक पर रखते हैं तो वेधादीक्षा होगी ।
श्रीगुरु प्रणवपंचाक्षर मंत्र कानों में सुना दें तो मंत्रदीक्षा होगी ।
उस मंत्रस्वरूप को ही इष्टलिंग स्वरूप बनाकर करस्थल पर रखने से क्रियादीक्षा होगी ।

षट्स्थल ज्ञानसारामृत वचन १७९ पृ० १०७
और भी देखो—
मंत्र दीक्षाबलेनैव भागांगे प्राणलिंगकम् ।
शिवानुभवसूत्रम—अध्याय-५ श्लोक ५८ पृ० ७५

३३. सकलम् दक्कलाग्राह्यमिष्टलिंगम् प्रकीर्तितम् ।
इष्टसिद्धिकरम् सभ्यगतिष्टपरिहारकम् ॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-३ श्लोक २५ पृ० १९

३४. इष्टम् स्थूलतनो प्रोक्तम् प्राणम् सूक्ष्मतनोः स्मृतम् ।
भावाख्यम् कारणस्यैवम् तनुत्रयगतम् त्रयम् ॥
चन्द्रज्ञानागम—क्रियापाद पटल-३ श्लोक ४५ पृ० २१

३५. पंचसूत्रयमायुक्तमिष्टलिंगम् धरेत्सदा ।
इष्टलिंगे कलापूर्णे गुरुदत्ते महोत्तमे ।
न लक्षणम् परीक्षेत गुरुणा पावितम् यतः ।
मकुटागम क्रियापाद पटल-४ श्लोक ४८-४९ पृ० १६

३६. शिष्यपाणितले दत्ता या दीक्षा सा क्रिया भवेत् ।
कारणागम क्रियापाद पटल-१ श्लोक १४ पृ० २

३७. भावनातीतमव्यक्तम् परब्रह्म शिवाभिदम ।
इष्टलिंगमिदम साक्षादनिष्ट परिहारकम ।
धारयेदवधानेन शरीरे सर्वदा बुधः ।
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-६ श्लोक ५१-५२ पृ० ६५-६६

३८. बोलते, देखते और भोगते समय
वश में करते उपभोग करते और सुख पाते समय
देह छोड़ते समय
लिंग कला, लिंग गुण तथा घनलिंग के याग के समय
मोग्गेय मायिदेव प्रभुवाणी (शिवाधन शतक) श्लोक-६० पृ० ६

३९. न तस्य सूतकम् किंचित्प्राणलिंगांग संगिनः ।
जन्मनोत्थम् मृतोत्थम् च विद्यते परमार्थतः ।
लिंगार्चनरतायाश्च ऋतौ वार्या न सूतकम् ।
तथा प्रसूतिकायाश्च सूतकम नैव विद्यते ॥
गृहे यस्मिन्प्रसूता स्त्री सूतकम् नात्र विद्यते ।
शिवपादाम्बुसंस्पर्शात्सर्वपापम् प्रणश्यति ।
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-९ श्लो० ४४-४६ पृ० १०२-१०३

४०. अतो यजेत्सदा लिंगम् सर्वकारणकारणम्
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-६ श्लो० ८ पृ० ३९

४१. हे अखण्डेश्वर ! आप ही साक्षी हैं चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र हो—किसी भी जाति या कुल में क्यों न पैदा हुआ हो गुरु की करुणा का पात्र बनकर अंग पर लिंग धारण करनेवाला आचार सम्पन्न सक्रिय महात्मा तीनों लोकों का अधिकारी है।
वचनशास्त्रसार भाग-१ पूर्वार्ध-वचन-१ पृ० ६३

४२. नानाविधानि काष्ठानि वन्हियोगाद्यथैकताम्।
तथानेकविद्यामर्त्या गुरुतः शिवतामियः ॥
....

अप्राकृतस्य भक्तस्य गुरुहस्तामलाम्बुजात्।
पुनर्जातस्यात्मजन्म जात्यादि न च कल्पयेत् ॥
सूक्ष्मागम-क्रियापाद पटल-५ श्लो० ६१-६४ पृ० ७७-७८

४३. अंतरंग में न रहे निरवय लिंग को सम्वय लिंग बनाकर श्रीगुरुस्वामी करस्थल पर जो लिंग ला रखते हैं वह अंतरंग को आवृत्तकर अंतःकरण के करणों के लिए किरण रूप में आलोकित करनेवाला चिदंश ही प्राणलिंग है,
वह मूल चैतन्य ही भावलिंग है—
....

अखण्ड परिपूर्ण सत्ता ही कूडलसंगमदेव है।
बसवण्णनवर वचनगळु (हेच्चिन वचनगळु) वचन-४ पृ० २

४४. प्रसाद पृ० ८९-१०७

४५. मैं उन बसवण्णजी के श्रीचरणों में 'नमो नमो' कहते जीवित हूँ
कूडलचन्नसंगय्य,

जिन्होंने मेरा जीवन सार्थक बना दिया
भावबंधन की उलझन न जाननेवाले मलिन जीवियों की मलिनता धोनेवाले श्रीगुरु के उपदेश की महिमा क्या गाऊँ स्थूलपंच भूतकाया का पंचतत्व सविवरण समझाया, दूर किया सूक्ष्म पंचभूतकाया का तनुमात्रगुणों का विवरण दिया—भेद दूर किया, कारण पंचभूतकाया की कारणवृत्तियों को गंभीरता से समझाया दूर किया—
स्थूल पंचभूतकाया में इष्टलिंग का प्रतिष्ठापन किया, सदाचार कुलस्थल की नींव डाली

सूक्ष्म पंचभूतकाया में प्राणलिंग का प्रतिष्ठापन किया, महाविचार के अनुभाव का सूत्रपात किया :

कारण पंचभूतकाया में तृप्तिलिंग का प्रतिष्ठापन किया—परमानन्द सुज्ञान को प्रेरित किया—

इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तनुत्रयों का असली रूप दिखाया पूर्वजन्म का निराकरण किया लिंगजन्म का प्रादुर्भाव होने दिया—
वचनशास्त्रसार खंड-२ वचन-२ पृ० ३६१

४६. वीरतंत्रेण यः कश्चिद्दीक्षितः पृथिवीतले ।
तस्य देहेच वसति शिवश्च परमात्मक ।।
तस्मिन्मलैर्विमुक्तस्तु (?) प्राणलिंगधरः पुमान्
अग्निसन्निधिमात्रेण पलायन्ते पिपीलिकाः ।
शिवसन्निधिमात्रेण पलायन्ते मलान्यपि ।।
वीरशैवागम हस्तलिखित प्रति पृ० ४४ गवर्मेंट ओरिएंटल लाईब्ररी सं० डी-५४९९ मद्रास

४७. इमाति शिवभक्तानाम् भवदोषततेः सदा ।
निवारणैककार्याणि ख्यातान्यावरणाख्यया ।।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-२ श्लो० २ पृ० ७

४८. गुर्लिंगम् जंगमश्च तीर्थम् चैन प्रसादक ।
भस्मरुद्राक्षमंत्राश्चैत्यष्टावरण संज्ञीताः ।।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-२ श्लो-२ पृ० ७

४९. मस्तक पर हाथ रखनेवाले और नित्यस्तु को हस्तपीठ पर रखनेवाले श्रीगुरु का कल्याण हो, उनकी कृपा बनी रहे।
मैलारद श्रीबसवलिंग शरणर कृतिगळु श्लो० ८० पृ० ४८

५०. घड़ा बनाने के लिए मिट्टी पहले चाहिए
गहने बनाने के लिए सोना पहले चाहिए
शिवपथ जानने के लिए गुरुपथ पहले चाहिए।
बसवण्णनवर वचनगळु वचन ७० पृ० १९

५१. गुरुकरसुजात सद्भक्त शरणों में पूर्वकुलगोत्र जात्याश्रम
खोजे बिना भक्तजंगम ही ठोस मानकर पीछे उनका…
मैलारद श्रीबसवलिंग शरणर कृतिगळु श्लो० ४१ पृ० २२

५२. मोक्षस्य दीक्षा संप्रार्स्य गुरु स्यान्मूलकारणम् ।
न, विना गुरुणा सिद्धयै साधनानि भवंत्यलम् ।।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-२ श्लो० ५ पृ० ७

५३. गुरुश्च गुणवान् प्राज्ञ: पारमाननछभासक:
....

लिंगांगस्थलभेदज्ञ: षट्स्थलज्ञानतत्पर:।
दीक्षाकर्मादिकुशल: षडध्वज्ञानवत्सल ।।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-२ श्लो० ४८-५१ पृ० ११

५४. गुरुदेव महादेव: साक्षात्सर्वजगत्प्रभु।
अन्यथा तं न जानीयात् परतत्वावबोधकम् ।।
अहमेव गुरुर्भूत्वा दीक्षा शिक्षाविधानत: ।
भक्तान्मदेकशरणास्तारयामि भवाम्बुधे: ।।
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-५ श्लो-११ पृ० ३३
और भी देखो—
गुरुदेवम् महादेवमेकीभावेन भावयेत् ।
अनादिवीरशैवसार संग्रह भाग-१-१२-३१ पृ० १६५

५५. गुरु कुपित हों तो हर भी नहीं बचा सकते
हर कुपित हो तो गुरु बचालेंगे—यह न भूलिए।
मैलारद श्रीबसवलिंगशरणर कृतिगळु श्लो० ३ पृ० १०४

५६. गुरुयात्रा देवयात्रा तीर्थयात्रेति च त्रिधा।
आसाम् त्रिविधयात्राणाम् गुरुयात्रा फलाधिका ।।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-२ श्लो० २८ पृ० ९

५७. गुरुप्रसादपात्रम् यस्स हि मोक्षाय कल्पते ।
न मुक्तिमूलमन्यद्धि विहाय गुरुसत्कृपाम् ।।
चन्द्राज्ञानागम क्रियापाद पटल-२ श्लोक ९६ पृ० १६

५८. न गुरोरधिकम् न गुरोरधिकम् न गुरोरधिकम् विदितम् विदितम् ।
शिवशासनतश्शिवशासनतश्शिवशासनतश्शिवशासनत ।
अनादि वीरशैवसार संग्रह-भाग-१ अध्याय-१४ श्लो० ४३ पृ० २०६

५९. दीयते परमम् ज्ञानम् क्षीयते पाशवन्धनम् ।
यथा दीक्षेति सा तस्याम् गुरुर्दीक्षागुरुरस्मृत: ।।
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-१५ श्लोक ७ पृ० १९५

६०. बोधको यम् समाख्यातो बोध्यमेतदिति स्फुटम्।
शिष्यो नियुज्यते एन स शिक्षा गुरुरुच्यते ।।
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-१५ श्लोक-२२ पृ० १९८
और भी देखो—

अंग पर लिंग देनेवाला आचार्य हुआ—
मन को ज्ञान का बोध देनेवाला शिक्षागुरु हुआ।

मोक्ष विमोक्ष दोनों का मर्म समझाकर काया का कर्म मिटाकर, जीव का भव छिन्नकर तद्रूप दर्शानेवाला ज्ञानगुरु
वचनगळल्लि वीरशैवधर्म-पृ० २०४

६२. आत्मा में प्राण पंचाक्षरी प्रतिष्ठापित कर हे सद्गुरु, मुझे शिवात्मा बनाया—इससे अपनी आत्मशुद्धि हुई, पंचभूतों में पंचब्रह्म को प्रतिष्ठापित किया—इससे अपनी भूतशुद्धि हुई,
अण्डज जरायुज आदि चौरासी लाख योनियों में भटकते जीव को अयोनित किया—इससे अपनी जीवशुद्धि हुई,
अंगाश्रय दूर किया लिंगाश्रय बनाया—इससे अपनी मनःशुद्धि हुई।
पशु रूपी अज्ञान द्रव्य हर लिया—परमसुज्ञान द्रव्य बनाया इससे अपनी द्रव्यशुद्धि हुई,
इस प्रकार मुझे सर्वशुद्ध बनाया, पूर्वाश्रय दूर किया हे कूडल चन्नसंग, आपको 'न गुरोरधिकम् न गुरोरधिकम् न गुरोरधिकम्' कहूँगा।
षट्स्थल चक्रवर्ती चन्नबसवण्णनवर वचनगळु वचन ५५ पृ० २४

६३. सर्वं देवमयम् लिंगम् तस्मिन् साक्षाच्छिवः स्वयम्।
अनुग्रहाय वसति तस्मालिंगम् प्रपूजयेत्॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-३ श्लोक ४९ पृ० २१८

६४. अंतरंग में न रहे निरवय लिंग को सावय लिंग बनाकर श्रीगुरुस्वामी करस्थल पर उसे रख दे तो अंतरंग को आवृत अंतःकरण के कारण ही किरण बन आलोकित करनेवाला चिदंश ही प्राणलिंग है, वह मूल चैतन्य ही भावलिंग है। अखण्ड परिपूर्ण की सत्ता स्वयं कुडलसंगमदेव हैं—बसवण्णनवर वचनगळु (हेच्चिन वचनगलु)

६५. प्रभु, अपने हृदय में निहित परम चिदालोक को हस्त-मस्तक के योग से महालोक में परिणत किया—
प्रभु, अपने आराध्य कूडलसंगमदेव, मुझमें इस प्रकार आपका अस्तित्व प्रकट कर रहे थे—बसवण्णनवर वचनगळु (हेच्चिन वचनगळु) वचन-६ पृ० २-३

६६. जलकुंभाग्रसव्दयाप्ततैलबिन्दुर्यथा तथा।
देहप्राणात्मसुव्याप्ता संस्थिता शांभवीकला॥
ज्वलत्कालानलाभासा तटित्कोटिसमप्रभा

तस्योर्ध्वेतु शिखा सूक्ष्मा चिद्रूपा परमाकला ॥
या कला परमा सूक्ष्मा तत्वानाम् बोधिनी परा ।
ताम् आकृष्य यथान्यायम् लिंगे समुपवेशयेत् ॥
प्राणप्रतिष्ठामंत्रंच मूलमंत्रम् पठेदणि ।
अथास्मिन् संस्कृते लिंगे सुस्थिरो भव सर्वदा ॥
कारणागम क्रियापाद पटल-१ श्लो० १२२-१२५ पृ० १३

६७. श्रीगुरुस्वामी अपने करस्थल पर आपको स्थापित कर चूके तो मयाज्योतिर्मय में तंमघ कहाँ ? कपिलसिद्धमल्लिकार्जुन रूपी महासमुद्र में विलीन होने के बाद मैं अपने को अलग नदी मानूं यह कैसे होगा ?
लिंगलीलाविलास चरित वचन ४३ पृ० १३६-१३७

६८. इष्टावाप्तिकरम् साक्षादनिष्टपरिहारकम् ।
इष्टिः पूजा तया नित्यमिष्टम् पूजितमादरात् ।
इष्टलिंगमिति प्रोक्तमाचार्यै लिंग पूजकैः
इष्टमर्थम् स्वभक्तानाम् अनुयच्छति सर्वदा ॥
शिवानुभवसूत्रम्-३ श्लो० ९-१० पृ० ३५

६९. सकलम् दक्कलाग्राह्यमिष्टलिंगम् प्रकीर्तितम् ।
इष्टसिद्धिकरम् सम्यगनिष्टपरिहारकम् ॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-३ श्लो० २५ पृ० १९

७०. लिंगम् शैवमिदम् साक्षाच्छिवशक्त्युभयात्मकम् ।
ध्यातव्यमर्चनीयम् च मुक्ति मुक्ति फलेच्छुना ॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-६ श्लो० ७ पृ० ३८

७१. जग सम विशाल नभ सम विशाल मिति सम विशाल आपके समान विशाल
पाताल से दूर-दूर आपके श्रीचरण
ब्रह्माण्ड से दूर-दूर आपके श्रीमकुट ।
अगम्य अगोचर अप्रतिम लिंग कूडलसंगमदेव
अपने वरस्थल पर आकर बसवण्णनवर वचनगळु वचन-७४३ पृ० १९८

७२. योगिनाम् च यतीनाम् च ज्ञानिनाम् मंत्रिणाम् तथा ।
ध्यानपूजानिमित्ताय सकलम् निष्कलम् भवेत् ॥
वातुलागम हस्तलिखित प्रति तत्वभेद पटल श्लो० १९

धारवाड के मुरधामठ केपरमपूज्य स्वामीजी द्वारा संग्रहीत

७३. अर्चन पूजन साकार का—निराकार का क्या भरोसा।
श्रीगुरु करस्थल पर प्राणलिंग रख देते हैं तो
हे उरिलिंगप्रिया विश्वेश्वर, हीरे में असीम का अनुसंधान संभव है।
शून्यसंपादने अध्याय-२३ वचन २३ पृ० २५६

७४. प्राणवद्धारणीयम् तत्प्राणलिंगमिदम् तव।
कदाचित्कुत्रचिद्वापि न वियोजय देहतः॥
धारयेच्छंकरम् लिंगम् शरीरे प्राणयोगतः।
सिद्धान्त शिखामणि—अध्याय-६ श्लो० २६-२८ पृ० ६१

७५. इष्टम् स्थूलत नोः प्रोक्तम्।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-३ श्लो० ४५ पृ० २१

७६. श्रीगुरु मेरे प्राणों में निहित परम कला निकालकर शिवलिंगमूर्ति बना मेरे कर-स्थल पर उसे रखा—वह लिंग सभी अवस्थाओं में अंग से कदापि अलग न होने का—श्रीगुरु का यह आदेश है—इसलिए निमिषार्ध के लिए भी अंग से लिंग छूटा तो हे महालिंग गुरु शिवसिद्धेश्वर प्रभु। घोर नरक से बचना संभव न होगा।
षट्स्थल ज्ञानसारामृत वचन १७७ पृ० १०६

७७. आत्मा यम् केवलः शुद्धः शिवस्यांश सदा मलः।
नित्यो निरंजन शान्तस्तस्मादात्मा स्वयम् शिवः।
सो यमात्मा शिवांगम् स्याच्छिवेनांगीकृतत्वतः।
सर्वज्ञात्वादिभेदैश्च शिवांगमिदमिष्यते॥
शिवानुभवसूत्रम् अध्याय-५ श्लो० ३-४ पृ० ६१

७८. एवम् समर्चनम् कुर्यादिष्टलिंगस्य पार्वति।
तद्ध्यानम् मनसा यत्र प्राणलिंगार्चनम् मतम्।
मनोवृत्तिलयस्तत्र भावलिंगस्य पूजनम्॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-६ श्लो० ४७ पृ० ४२-४३

७९. प्राणेषु च मनोमध्ये ज्योतिर्लिंगस्वरूपिणे।
प्राणग्रंथि स्वरूपाय प्राणलिंगाय मंगलम्॥
भावग्राहाय पूर्णाय भावाभावैक हेतवे।
कलासर्गकृते तुभ्यम् भावलिंगाय मंगलम्।
कारणागम क्रियापाद पटल-८ श्लो० ६७-६८ पृ० ६९

८०. पूजयन्निष्टलिंगम् तु निध्यायन् प्राणलिंगकम् ।
भावयन् भावलिंगम् वै मृत्युपाशांश्छिनत्ति सः ॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-३ श्लो० ४५ पृ० २१

८१. इष्टम् स्थूलतनोः प्रोक्तम् प्राणम् सूक्ष्मतनोः स्मृतम् ।
भावाख्यम् कारणस्यैवम् तनुत्रयगतम् त्रयम् ।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-३ श्लो० ४५ पृ० २१

८२. तिल में परिमल रहेगा कि तेल में ?
देह पर इष्टलिंग धारण करना चाहिए—प्राणलिंग नहीं—
इसलिए हे सिद्धरामय्या, गुहेश्वरलिंग से इष्टलिंग का संपर्क होना चाहिए, प्राणलिंग का नहीं—
शून्यसंपादने अध्याय-१० वचन ३४ पृ० २१९

८३. इष्टलिंग प्राणलिंग दोनों में अंतर कौन जाने, बोलिए।
....
प्राणलिंग का प्रसन्न मुख देख उसे प्रभावी बनाने के लिए, तेज रूपी दर्पण हाथ में लिया है—
हे सिद्धरामय्या, गुहेश्वरलिंग में अपने को विलीन बना लिया है, यह सिद्ध करने के लिए समस्त लक्षणों समेत मिट जाना चाहिए।
अल्लमवचन चंद्रिके वचन ७५४ पृ० १६७

८४. गम्लृ गतौ—(तिङन्त) पृ० २०१

८५. अथ जङ्गमशब्दार्थमाह। जम् गम्यन्ते अतिशयेन गच्छन्ति जानन्तीति जंगमा।
यतस्सर्वे गत्यर्था ज्ञानार्था अतिशयेन ज्ञानवन्त इत्यर्थ
वेदान्तसारवीरशैवचिन्तामणि अध्याय-१२ श्लो० १९८ पृ० २६२

८६. स्वेच्छया संचरन् योगी विमुंचन् देहमानिताम् ।
दर्शनैः स्पर्शनैः सर्वानज्ञानणि विमोचयेत् ॥
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-१५ श्लो० ७० पृ० १९५

८७. सर्वलोकोपकाराय यो देवः परमेश्वरः ।
चरत्यतिथिरूपेण नमस्ते जंगमात्मने ॥
वीरागम अनादिवीरशैवसार संग्रह भाग-२ अध्याय-१६ श्लो० २ पृ० १ में उद्धृत

८८. जानन्त्यतिशयाद्ये तु शिवम् विश्वप्रकाशकम् ।
स्वस्वरूपतया ते तु जंगमा इति कीर्तिताः ॥
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-११ श्लो० ३६ पृ० १४३

८९. सद्रूपश्च जकारश्च चिद्रूपश्च गकारकः।
आनन्दस्यान्मकारश्च सच्चिदानन्दजंगमम्।
अनादि वीरशैवसार संग्रह भाग-२ अध्याय-१६ श्लो०-५९ पृ० ९

९०. स्वरूपज्ञानसंपन्नो ध्वस्ताहम्ममताकृतिः।
स्वयमेव स्वयं भूत्वा चरतीति चराभिदः॥
कामक्रोधादिनि मुक्तः शान्ति दान्ति समन्वितः।
समबुद्ध्या चरेद्योगी सर्वत्र शिवबुद्धिमान्।
इदम् मुख्यमिदम् हीनमिति चिन्तामकल्पयन्।
सर्वत्र संचरेद्योगी सर्वम् ब्रह्मेति भावयन्॥
न सम्मानेषु संप्रीतिम् नावमानेषु च व्यथाम्।
कुर्वाणः संचरेद्योगी कूटस्थे स्वात्मनि स्थितः॥
....

चिदानन्दनिजात्मस्थो मोदते मुनिपुङ्गवः।
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-१६ श्लो० ५७-६३ पृ० १९२-१९३

९१. स्थावर भक्त के लिए सीमा है, चरलिंग जंगम के लिए सीमा कहाँ?
अम्बुधि की सीमा है, बहती नदी की भी कोई सीमा है?
भक्त के लिए सीमा हो तो हो—
जंगम के लिए कोई सीमा है, कूडलसंगमदेव?
बसवण्णनवर वचनगळु—वचन ४१८ पृ० १०९

९२. भगवद्गीता-२ श्लो० ५४-७२

९३. सर्वतीर्थाभिषेकांच सर्वयज्ञविधानतः।
सर्वं देवाराधनांच चरपूजा गरीयसी॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-४ श्लो० ३३, पृ० २९

९४. जंगम अपने प्राण हैं, जंगम अपना जीव है।
जंगम अपने पुण्य का फल है, जंगम अपना निधि-निधान है।
जंगम अपने हर्ष की सीमा है—
हे चन्नमल्लिकार्जुन जंगम के खेला करूँ
शिवशरणेयर वचनगळु १६८ पृ० ६३

९५. जंगम अपने मठ में पदार्पण करे इस उद्देश्य से लिंगार्चन करूँगा।

वह जंगम अपने मठ में चरण रखे तो लिंगार्चन के बदले जंगमार्चन करूँगा...

· लिंगार्चनम् न कर्तव्यम् कर्तव्यम् जंगमार्चनम् ।
लिंगजंगमयोर्मध्ये जंगमस्तु विशिष्यते ॥
............जंगमार्चन करूँगा
शून्यसंपादने खंड-२ वचन २० पृ० १४३
और भी देखो—
जंगमान समर्च्यैव मत्पूजा क्रियते यदि ।
सा पूजा विफलैव स्यादित्येतच्छिवशासनम् ॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-४ श्लोक ३६ पृ० २६

९६. सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-१५ श्लोक ५१-७१ पृ० २०५-२१०

९७. एकमूर्तिस्त्रयोभागा गुरुर्लिंगमच जंगमः ।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-५ श्लो० १५ पृ० २८
और भी देखो—
एक एव शिवस्साक्षात्सर्वानुग्राहकः प्रभुः ।
गुरुजङ्गमलिङ्गात्मा वर्तते भुक्तिमुक्तिदः ॥
सिद्धान्त शिखामणि अध्याय-५ श्लो० ६० पृ० १०७

९८. श्रृणु ते कथयिष्यामि पादतीर्थप्रसादयोः ।
स्वरूपमपि माहात्म्यमीश्वरेण प्रकाशितम् ॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-५ श्लोक ४ पृ० २७

९९. अथवा पादशब्देन गुरुदेव निगद्यते ।
शिष्यश्चोदकशब्देन तयोरैक्यम् तु दीक्षया ॥
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-१४ श्लोक ७-८ पृ० २७७-२७८

१००. पाकारः परमम् ज्ञानम् दोकारो दोषनाशनः ।
दकारो दह्यते जन्म ककारः कर्मछेदनः ॥
शिवरहस्य अनादिवीरशैवसार संग्रह भाग-२ अध्याय-१८ श्लोक ४४ पृ० ४५-४६ में उद्धृत

१०१. शोषणम् पापपङ्कस्य दीपनम् ज्ञानतेजसः ।
गुरोः पादोदकम् चित्रम् संसार द्रुमनाशनम् ॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-५ श्लोक-१६ पृ० २८

१०२. करुणजल विनयजल समताजल
करुणजल ही गुरुपादोदक, विनयजल ही लिङ्गपादोदक, समताजल ही जंगम

पादोदक, गुरुपादोदक से संचितकर्मनास्ति। लिङ्गपादोदक से प्रारब्धकर्मनास्ति।
जंगम पादोदक से आगामीकर्मनास्ति।
इस प्रकार इस त्रिविधोदक से त्रिविधकर्मनास्ति
इसलिए आपके शरण ही इस त्रिविधोदक वो जाने कूडल चन्नसंगमदेव।
षट्स्थल चक्रवर्ती चन्नबसवण्णनवर वचनगळु वचन ११६ पृ० १४
और भी देखो—

पादतीर्थम् त्रिधा शंभोर्गुरजङ्गमयोरपि।
दीक्षाशिक्षाज्ञानमिति त्रिसंज्ञम् तभ्दवत्य हो॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-५ पृ० २७

१०३. गुरुपादोदक से स्थूल देह-शुद्धि होगी, क्रियापादोदक से सूक्ष्म देह-शुद्धि होगी, ज्ञानपादोदक से कारण-देह-शुद्धि होगी,
गुरुपादोदक में इष्टलिङ्ग का संपर्क होगा। क्रियापादोदक में प्राणलिङ्ग का संपर्क होगा, ज्ञानपादोदक से भावलिङ्ग का संपर्क होगा।
इसलिए पादोदक ही प्रत्यक्ष परब्रह्म कपिलसिद्धमल्लिकार्जुन।
वचनळल्लि वीरशैवधर्म पृ० २३६

१०४. दीक्षया पगतद्वैतम् यदज्ञानम् गुरुशिष्ययोः।
आनन्दस्यैक्यमेते न दीक्षापादोदकम् स्मृतम्॥

———————————

गुरुशिष्यमयम् ज्ञानम् शिक्षा योगिनमीर्यते
तयोरसमरसत्वम् हि शिक्षा पादोदकम् स्मृतम्॥

——— ————

तदैक्यसम्पदानन्द ज्ञानम् ज्ञान गुरुर्मतः।
तत्सामरस्यम् शिष्यस्य ज्ञानपादोदकम् विदुः॥
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय १४ श्लोक ६-२८ पृ० २७७-२८१
और भी देखो—वचनशास्त्रसार भाग-२ पृ० ५२१-५२५

१०५. अर्पयित्वा निजे लिङ्गे पत्रम् पुष्पम् पुलम् जलम्।
अन्नाद्यम् सर्वभोज्यंच स्वीकुर्याद्भक्तिमान्नरः॥
गुरुत्वात्सर्व लोकानाम् शम्भोरमिततेजसः।
तस्मै निवेदितम् सर्वम् स्वीकर्म्यम् तत्परायणैः।
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-६ श्लो० ७१-७२ पृ० ११६-१७

१०६. पत्रम् पुष्पम् फलम् तोयमन्नपानाद्यमौषधम्।

असमर्प्य न भुंजीत भगवन्तम् सदाशिवम् ॥
चन्द्रज्ञानागम पटल-५ श्लोक २४ पृ० २९

१०७. अर्चनार्पणसापेक्षा वर्तते द्रव्यशुद्धये ।
अर्पणाद्द्रव्यशुद्धिस्यात् प्रसादस्तदनन्तरम् ॥
एवमर्पणसपिक्षै रर्चनैः शिवमर्चयेत्
द्रव्यशुद्धिम् परम् लब्धवा प्रसादसुखमश्नुते ॥
विशेषार्थप्रकाशिका अध्याय-२ श्लोक १७-२३

१०८. शुद्ध सिद्ध प्रसिद्ध प्रसाद जानिए
शुद्ध प्रसाद गुरुमुख से मिलता है : सिद्धप्रसाद लिंग मुख से मिलता है,
प्रसिद्ध प्रसाद जंगम मंख से मिलता है.........
गुरु प्रसाद से तनु शुद्ध होता है, लिंग प्रसाद से मन शुद्ध होता है,
जंगम प्रसाद से प्राण शुद्ध होते हैं।
इस त्रिविध प्रसाद-ग्रहण से यह भव नष्ट हुआ—
षट्स्थल चक्रवर्ती चन्नबसवण्णनवर वचनगळु—वचन ६३७ पृ० ३०१-३०२

और भी देखो—

गुरुभुक्तप्रसादो यः स शुद्धः परिकीर्तितः ॥
....

लिङ्गार्पितप्रसादो यं सिद्ध इत्यभिधीयते ॥
....

चरार्पित प्रसादो यं प्रसिद्धः परिकीर्तितः ॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-८ श्लोक २३-२५ पृ० ५८

१०९. इष्टलिङ्गार्पितम् शुद्धम् प्राणलिंगमुखार्पितम् ।
सिद्धम् ततः प्रसिद्धम् हि भावलिंगार्पितम् विदुः ॥
वातुलागम अनादि वीरशैवसार संग्रह भाग-२ अध्याय-२४ श्लोक १८ पृ० १८१ में उद्धृत

११०. विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा ।
अमरकोश काण्ड-१ स्वर्गवर्ग श्लोक ३८ पृ० ८

१११. सद्योजातात्पृथिवी तस्य निवृत्तिस्तस्याः कपिलवर्णानन्दा
तस्याः गोमयेन विभूतिर्जाता.........
ईशानादाकाशस्तस्माच्छान्त्यतीता तस्याश्चित्रवर्णा
सुमनास्तस्याः गोमयेन रक्षाजाता ॥

अनादिवीरशैवसार संग्रह भाग-२ श्लोक ३-७ पृ० ४७-४८
और भी देखो—
पारमेश्वरागम भाग-२ पटल-२ पटल-१७,
सिद्धान्तशिखामणि—अध्याय-७

११२. विभूतिर्भूतिहेतुत्वाद्भसितम् तत्वभासनात् ।
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-७ श्लोक ४ पृ० ७०

११३. भासनात् भासितम् प्रोक्तम् भस्म कल्पाभक्षणात्
भूतिर्भूतिकरी यस्माद्रक्षा रक्षकरी यतः ।
पारमेश्वरागम भाग-२ पटल-१७ श्लोक ६० पृ० ६४

११४. ऐश्वर्यकारणाद्भूतिः…… ……सर्वाग्रभक्षणाद्भस्य
आपदाम् भूतप्रेतपिशाचब्रह्म राक्षसापस्मारभवभीतिभ्यो—
भिरक्षणाद्रक्षति अनादिवीरशैवसार संग्रह भाग-२ अध्याय-१९ पृ० ४८

११५. न भस्मनो न्यत्सदशमित्येतच्छिवशासनम् ।
भस्मनो महिमा गण्यस्तम् वक्तुम् केन शक्यते ।।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-६ श्लोक ६९ पृ० ३८
और भी देखो—

मुखे पंचाक्षरम् यस्य फाले भस्मत्रिपुंड्रकम् ।
चित्ते शिवानुसंधानम् तस्य पादरजो स्म्यहम् ।।
वीरशैवागम हस्तलिखित प्रति (डी-सं० ५४९९) क पृ० ६२
गवर्मेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्ररी, मद्रास

११६. त्रिपुंड्रम् कारयेद्धीमान् ब्रह्मविष्णु शिवात्मकम् ।
....
जंघाद्वये पादयोश्च द्वात्रिंशत्स्थानमुत्तमम् ।।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-६ श्लोक ४३-४६ पृ० ३५

११७. ....

११८. भस्मजाबालोपनिषद् पृ० ७-४९२

११९. रुद्रस्य नयनादुत्पन्ना रुद्राक्ष इति लोके ख्यायन्ते ।
रुद्राक्षजाबालोपनिषद् पृ० ४९५

१२०. त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानाम् त्राणनाय च……
चक्षुरुन्मीलनम् तथा……

वीरशैवागम हस्तलिखित प्रति (सं-डी ५४९९) पृ० ५४
गवर्मेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाईब्ररी, मद्रास

१२१. त्रिपुराणाम् वधार्थाय विभुना शम्भुना पुरा उन्मीलितानिचक्षूंसि···
उभाभ्याम् चारुपक्षाभ्याम् पतिता जलबिन्दवः
त एव बिन्दवो जाता महारुद्राक्ष वृक्षका।
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-७ श्लोक ३९ पृ० ४३
और भी देखो—
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-७ पृ० ७७-८२

१२४. मंत्र की व्याख्या इस प्रकार भी मिलती है :
मननम् सर्ववेदित्वम् त्राणम् संसार्यनुग्रहः।
मननत्राणधर्मित्वान्मन्त्र इतमभिधीयते ॥
मृगेन्द्रागम क्रियापाद पटल-१ पृ० २

१२५. आदौ नामः प्रयोक्तत्वम् शिवायेति ततः परम्।
सैषा पंचाक्षरीविद्या सत्रश्रुतिशिरोगता ॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-८ श्लोक ५ पृ० ४५

१२६. अशेषजगताम् हेतुः परमात्मा महेश्वरः।
तस्य वाचकमन्त्रो यम् सर्वमंत्रेककारणम् ॥
सिद्धान्तशिखामणि अध्याय-८ श्लोक ५ पृ० ८४

१२७. पंचाक्षरो महामंत्र प्रणवेन युतः शिवे।
षडक्षर इति प्रोक्तो मन्त्रराजाव्हयः परः ॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-४ श्लोक ३५ पृ० २८

१२८. सप्तकोटिमहामंत्रा विद्यन्ते लोकपावनाः
....
तस्मादपि श्रेष्ठतरा मम पंचाक्षरी शिवे।
अस्य मन्त्रस्य चैवान्ये उपमन्त्राः प्रकीर्तिताः ॥
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-३ श्लोक २-६ पृ० १५

१२९. कन्नड़ और संस्कृत के प्रकांड पंडित षडक्षरदेव ने कन्नड़ में राजशेखर विलास नाम का बृहद ग्रंथ लिखा है। इस महामंत्र की महत्ता और श्रेष्ठता वहाँ वर्णित है।

१३०. एकमेव परंब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्।
शिवतत्वम् शिवाचार्याः स्थलमित्याहुरदिरात् ॥

कैवल्यसार हस्तलिखित प्रति मुरघामठ धारवाड।

१३१. यत्रादो स्थीयते विश्वम् प्राकृतम् पौरुषम् यतः।
लीयते पुनरन्ते च स्थलम् तत्प्रोच्यते ततः॥
शिवानुभवसूत्रम् अध्याय-२ श्लोक ४ पृ० १७

१३२. मिरर आफ वीरशैविज़्म पृ० ४३

१३३. लिङ्गत्वेनांग रूपेण स्थलमात्रम् तथोच्यते।
स्थलम् चिन्मात्रमेव स्याल्लिगम् स्याच्छिव एव हि॥
तथांगम् जीव एव स्यादिति शैवी परा स्थिति।
शिवानुभवसूत्रम् अध्याय-२ श्लोक १८-१९ पृ० २४

१३४. लिंगाचारः सदाचारः शिवाचारः तथैव च।
भृत्याचारो गणाचारः पंचाक्षरः प्रकीर्तितः॥
चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद पटल-९ श्लोक ४ पृ० ५५

१३५. वीरशैवास्तु षड्भेदाः स्थलधर्मविभेदतः।
भक्तादिव्यवहारेण प्रोच्यन्ते शास्त्रपारगैः॥
....

आदौ भक्तस्थलम् प्रोक्तम् ततो माहेश्वरस्थलम्।
प्रसादिस्थलमन्युत्तु प्राणलिङ्गिस्थलम् ततः।
शरणस्थलमाख्यातम् षष्ठमैवयं स्थलामतम्॥
सिद्धान्त शिखामणि अध्याय-५ श्लोक २ २२-२४ पृ० ४८

१३६. सदाकाले शिवेभक्तिः लिङ्गजङ्गमपूजनम्।
लांछनेन शरण्यम् च भक्तिस्थलसुबुद्धिमान्॥
अनादि वीरशैव सार संग्रह भाग-२ अध्याय-२२ श्लोक २ पृ० ७९
त्यक्ताभिमानदेहादौ भक्त इत्युच्यते बुधैः
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-८ श्लोक ३३ पृ० ५९

१३७. हे महालिंगगुरुशिवसिद्धेश्वर प्रभु।
सदाचार में निरत रहना, शिव में भक्ति रखना, शिवलांछन जहाँ जहाँ दिखाई दे उसकी वन्दना करना, लिंग जंगम दोनों को एक मानते हुए भृत्याचार सदाचार में युक्त रहना ही भक्तस्थल कहलाता है—
षट्स्थलज्ञानसारामृत वचन-२१२ पृ० १३३

१३८. विश्वास के साथ भक्त बनकर, उस विश्वास में निहित निष्ठा से माहेश्वर बनकर, उस निष्ठा में निहित सावधानी से प्रसादी बनकर उस सावधानता में

निहित स्वानुभाव से प्राणलिङ्गी बनकर, उस स्वानुभाव में निहित ज्ञान से शरण बनकर, वह ज्ञान सत्य में समरस होकर निर्भाव पद में रहने का मर्म ही ऐक्य स्थल है।

शून्य संपादने खंड-१ पृ० ११६

१३९. आस्तिक्यबुद्धिनियमव्रत सत्यधर्मा
शौचादि लक्षण परिस्फुट सच्चरित्रम्।
लिंगैक्यनैष्ठिकतया सह वीरवृत्तम्।
माहेश्वरस्थलमिति प्रवदन्ति सन्तः॥
शिवानुभवसूत्रम् अध्याय-४ श्लोक ३१ पृ० ५४
तच्चित्तममलम् यस्य स वै माहेश्वरः स्मृतः।
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-८ श्लोक ३४ पृ० ५९

और भी देखो—

अनृत अनाचार अन्य हिंसा
परधन परस्त्री परनिन्दा आदि को छोड़
लिंगनिष्ठा से शुद्धात्मक बन गया तो
हे महालिंगगुरु शिवसिद्धेश्वर प्रभु।
वही माहेश्वरस्थल कहलाएगा।
षट्स्थलज्ञानसारामृत वचन-२६४ पृ० १६५

१४०. त्रिविध नित्य त्रिविध अनित्य इन्हें कौन जानता है?
उसे त्रिविध को त्रिविध अर्पित कर त्रिविध प्रसाद ग्रहण किया तो
उसे त्रिविधनाथ मानूंगा,
उसे वीर मानूंगा, उसे धीर मानूंगा
उसे गुहेश्वरलिंग में प्रसादी मानूंगा
शून्य संपादने खंड-१ वचन ६३ पृ० १०९

और भी देखो—

सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-८ श्लोक २२-२५ पृ० ५८

१४१. प्रसादी के लक्षण बताता हूँ, सुनिये:
काया, मनसा, वाचा सत्यशुद्ध हो, विश्वास श्रद्धा से युक्त हो शरीर और प्राण स्वामी को समर्पित कर प्रसाद ग्रहण करने वाला ही प्रसादी कहलाएगा...
षट्स्थलज्ञानसारामृत— वचन-३०३ पृ० १८६

और भी देखो--

अनादि वीरशैवसार संग्रह भाग-२ श्लोक-१ पृ० १७९

१४२. प्राणे लिंगम् प्रतिष्ठाप्य लिंगे प्राणम् निधाय च।
लिंगम् निरीक्षमाणस्सन् लिंगप्राणी सदा भव॥
कारणागम क्रियापाद पटल-१ श्लोक १०५ पृ० ११

और भी देखो—

परब्रह्मालिंगम् प्राणो जीवः प्रकीर्तितः।
तदेकभावमननात्समाधिस्थः प्रकीर्तितः॥
सिद्धान्तशिखामणि खंड-२ अध्याय-१२ श्लोक ४ पृ० ९

और भी देखो—

सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-८ श्लोक ३५ पृ० ५९

१४३. लिंगाङ्कितततनुप्राणो लिङ्गजीवस्तु जीवनम्।
लिङ्गयतत्वपरिज्ञानी प्राणीलिङ्गिस्थलम् भवेत्।
षट्स्थलचक्रवर्ती चन्नबसवण्णनवर वचनगळु वचन ९५९ पृ० ४५३

१४४. ज्ञानप्रकाशबलतः स्वयमेव लिङ्गम्।
देहेन्द्रियादि मम रूपमिति प्रबुद्धया।
युक्ते समस्तविषयेऽसति यद्विशुद्धम्।
तत्प्राहुरागमविदः शरणस्थलम् हि॥
अनादि वीरशैवसार संग्रह भाग-२ अध्याय-२६ श्लोक-१ पृ० २१०

१४५. तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शङ्करम् शरणम् गतः।
तदनन्तसुखम् प्राप्य मोदते नान्यचिन्तया
सिद्धान्तशिखामणि—अध्याय-१३ श्लोक १२ पृ० १६५

और भी देखो—

अल्लम वचन चन्द्रिके वचन ५४० पृ० ११९
लिङ्गलीलाविलास चरित वचन ८४ पृ० ३६१ षट्स्थलप्रभे पृ० ४०५-४०६

१४६. शिवाजीवोभयभ्रान्तिरहितश्चैवय उच्चते।
सूक्ष्मागम क्रियापाद पटल-८ श्लोक ३५ पृ० ५९

१४७. वाहम् त्वमप्रथितशब्दविभेदवृत्तिः।
न प्राणदेहमनैन्द्रिय भौतिकानि।

सर्वम् अ्र मात्मकमिदम् मयि नेतिभावात् ।
ऐक्यस्थलम् समरसम् सुखरूपमाहुः ।।
अनादि वीरशैवसार संग्रह भाग-२ अध्याय २७ श्लोक-१ पृ० २४०

और भी देखो—

आत्मोपनिषद् श्लोक २०-२३ पृ० ४५२-४५३

उपसंहार

भारत की दार्शनिक व धार्मिक ऐतिहासिक परंपरा में वीरशैव दर्शन व धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। वीरशैवधर्म का विकास शैवधर्म से हुआ है। अठ्ठाईस शैवागम, दर्म सौ पाँच उपागम, अल्लमप्रभु, चन्नबसवण्ण, वसवण्ण, सिद्धराम जैसे शरणों के वचन' शिवाग्रयोगी शिवाचार्य, नीलकंठ शिवाचार्य, मोग्गेये मायिदेव, मरितोंटदार्य तथा औरो के ग्रंथ आदि वीरशैव धर्म के महत्वपूर्ण प्रामाणिक आकर ग्रंथ माने गये हैं।

वीरशैव धर्म के अनुसार लिङ्ग ही परमतत्व है। वह उपनिषदों के परब्रह्म के समकक्ष है। लिङ्ग सृष्टि, स्थिति और लय का कारण माना गया है। छांदोग्य उपनिषद् में ठीक लिङ्ग की कल्पना से मिलता-जुलता एक सूत्र है 'तज्जलान्'। तैत्तिरीय और महोपनिषदों में कहा गया है कि सृष्टि ईश्वरीय संकल्प या लीला का परिणाम है। यही शैवागम का भी दृष्टिकोण है।

वीरशैव धर्म में लिङ्ग के विविध अंशों पर जोर देने के लिए उसके बयलु, शून्य, निष्कललिङ्ग, स्थल आदि कई नाम हैं। संस्कृत व कन्नड़ में उपलब्ध जाने-माने ग्रन्थों के प्रमाणों के सहारे इन सब पारिवारिक पदों की विस्तृत व्याख्या की गई है।

शैवागमों में स्पष्ट कहा गया है कि निराकार और निर्गुण परब्रह्म, भक्तों की सहायता करने हेतु, आकार ग्रहण करता है। आगे उनमें यह भी कहा गया है कि पर-ब्रह्म का साक्षात्कार आकार के माध्यम से ही होना चाहिए। 'अनुभूतिप्रकाश' में विद्यारण्यजी का भी यही कहना है सगुण ब्रह्म का ध्यान करनेवाले ही परब्रह्म के साक्षात्कार के अधिकारी हैं। वीरशैव शरणों ने इष्टलिङ्ग धारण करने की अनिवार्यता पर जोर दिया है। गुरु शिष्य को इष्टलिङ्ग देता है। यह शिष्य की आत्मा में स्थित परब्रह्म का बाह्य प्रतीक मात्र है।

उपनिषदों में जीव आत्मा कहा गया है। वीरशैव दार्शनिकों ने जीवात्मा को द्योतित करने हेतु नौ नाम दिये हैं। इनमें पिंड और अंग ये दोनों मर्मपूर्ण हैं। ये विस्तार से जीवात्मा की कल्पना की स्पष्ट व्याख्या करनेवाले नाम हैं।

वीरशैव दार्शनिकों का कहना है कि जीव शिव का ही अंश है, पवित्र है, शाश्वत है और असल में स्वयं शिव है। जीव शिव की विमर्श शक्ति से निर्मित है।

सिद्धान्तशिखामणि में कहा गया है कि शिव अपनी ही विमर्श शक्ति से युक्त था। शिव को सृष्टि-निर्माण की इच्छा हुई तो शिव की विमर्श शक्ति (त्रिगुणों के) गुण-त्रय के प्रभाव से भोक्ता, भोज्य और प्रेरयिता में परिणत हो गई। श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी ब्रह्म के त्रिविध रूप के नाते जीव, भोज्य और प्रेरयिता का उल्लेख हुआ है।

उपनिषदों में ऐसी उक्तियाँ मिलती हैं जो जीव और ब्रह्म में अंतर सूचित करती हैं। कई ऐसी भी उक्तियाँ हैं जो जीव-ब्रह्म का ऐक्य द्योतित करती हैं।

परस्परविरोधी प्रतीत होनेवाली उपनिषदों की उक्तियों में यथार्थत: सत्य की ही अभिव्यक्ति हुई है। इसका अनुभव वीरशैव शरणों को हुआ है। उनका कहना है कि जीव-ब्रह्म के द्वैत को सूचित करनेवाली उक्तियाँ जीव की आरंभिक अवस्था का संकेत मात्र है। इन शरणों ने घोषित किया है कि जीव-ब्रह्म के अद्वैत को सूचित करनेवाली उक्तियाँ जीवात्मा-परमात्मा के ऐक्य का संकेत मात्र हैं। इस प्रकार वीरशैव धर्म शुरू में जीव-ब्रह्म का भेद स्वीकार करता है और अंत में पूर्ण ऐक्य या अभेद को मानता है। इस प्रकार उपनिषदों की परस्पर विरोधी लगनेवाली उक्तियाँ जीव के स्वभाव का स्तरभेद मात्र सूचित करती हैं।

वीरशैव धर्म में प्रतिपादित जीव की कल्पना की तुलना शैवसिद्धान्त, काश्मीरी शैवागम, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, अद्वैत आदि दर्शनों में निरूपित जीवात्मा की कल्पना से की गई है। यह देखा गया है कि कुछ अंशों में उनमें साम्य है और बाकी अंशों में उनमें वैषम्य भी है।

वीरशैव धर्म में छत्तीस तत्व माने गये हैं। पर ये शैव सिद्धांत और काश्मीरी शैवागम में स्वीकृत तत्वों से कुछ मानों में भिन्न हैं। एक तालिका दी गई है जिसमें समस्त तत्वों और उनके बारे में शरणों और दार्शनिकों के भिन्न-भिन्न मतों का भी उल्लेख किया गया है। उस तालिका और छत्तीस तत्वों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वीरशैव दार्शनिकों का दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक है। अत: तत्वों के विकास की प्रक्रिया आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित है।

दार्शनिकों ने सृष्टि के विकास का विवरण देते हुए कई सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। न्यायवैशेषिकों का आरंभवाद, सांख्यों का सत्कार्यवाद, अद्वैतियों का विवर्तवाद, विशिष्टाद्वैतियों का परिणामवाद आदि का संक्षिप्त विवेचन किया गया है। वीरशैव दार्शनिकों ने अविकृत परिणामवाद का सिद्धांत अपनाया है। मयूराण्डरसन्याय और स्वर्ण कुण्डल न्याय के दृष्टांतों से इस सिद्धांत का सुस्पष्ट विवेचन किया गया है। संक्षेप में उनका मत है कि— गहने सोने से बनते हैं और अलग-अलग नाम-रूपवाले होकर भी

सोने से भिन्न नहीं होते, समुद्र से तरंगे अलग नहीं हैं। इसी प्रकार शिव की शक्ति से निर्मित सृष्टि शिव से भिन्न नहीं। विलयन की दशा में भी सृष्टि सूक्ष्म रूप से शिव की शक्ति में मिल जाती है। इसलिए विश्व की सत्यता वीरशैव धर्म को मान्य है।

वीरशैव शरणों को इसका बोध हुआ है कि व्यक्ति के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर होते हैं। उनको यह भी मालूम है कि अंग-त्रय में मल-त्रय कर्म, माया और आणव रहता है। अपनी आध्यात्मिक साधना से वे जान गये हैं कि जीव-ब्रह्म में भेद इसी मल-त्रय का परिणाम है। अतः इस मल-त्रय के निवारणार्थ दीक्षा-त्रय का सूत्रपात हुआ है। भक्त की पूरी रक्षा के निमित्त और उसकी सहायता हेतु अष्टावरणों की उद्भावना हुई है। गुरु, लिंग, जंगम, पादोदक, प्रसाद, भस्म, रुद्राक्ष, मंत्र आदि का स्वरूप और प्रयोजन बताया गया है और उनकी अनिवार्यता और सत्य के साक्षात्कार में शिष्य या भक्त को उनसे मिलनेवाली सहायता का भी वर्णन किया गया है।

पंचाचारों से उदात्त और दिव्य जीवन बिताने में सहायता पहुँचती है। इस प्रकार वीरशैव धर्म में उदात्त और दिव्य जीवन-यापन पर सबसे ज्यादा जोर दिया गया है।

वीरशैवधर्म के अनुसार उपास्य-उपासक में अंतर शुरू में ही रहता है। दीक्षा के बाद जीवात्मा-परमात्मा में अंतर अष्टावरणों की सहायता से और पंचाचारों के निष्ठा-पूर्ण पालन से धीरे-धीरे लुप्त होता जाता है। अंततोगत्वा अंग-लिंग का ऐक्य (सामरस्य) हो जाता है। उपासक के इस ऐक्य को आध्यात्मिक प्रगति छः स्थलों में विभाजित हैं जैसे—भक्त, महेश, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण और ऐक्य। ये स्थल भक्ति तथा दिव्य गुणों के उत्कर्ष के द्योतक हैं शरणों ने बताया है कि आध्यात्मिक जीवन में उत्तरोत्तर प्रगति करते जाने के लिए साधक को इन विविध स्थलों पर किस प्रकार का आचरण करना चाहिए। अन्त में जीवात्मा-परमात्मा में अभेद स्थापित हो जाता है।

इस प्रकार अष्टावरण, पंचाचार, षट्स्थल, भक्ति-ज्ञान-क्रिया की समरसता आदि सत्यान्वेषण में और परब्रह्म में ऐक्य हो जाने में विशेष सहायक हैं।

वीरशैव धर्म के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति के लिए संसार का परित्याग आवश्यक नहीं है। वह सीधे-सच्चे जीवन पर जोर देता है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिपूर्ण को सर्वाधिक महत्व देता है। दीक्षा ग्रहण करने वालों को सामाजिक समानता और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का आश्वासन देता है। इस प्रकार मानव मात्र में नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष द्वारा वीरशैव धर्म विश्वबन्धुत्व कायम करना चाहता है।

□□